

कांतिकारी ब्रह्मण्ड गाथ गुप्त

ISSN 2394-1723

वर्ष 26 अंक 299, 1-15 सितंबर 2020

वार्षि

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका

महामारी बनाम महामानवता

सुधीर चंद्र आदित्य निगम प्रियदर्शन

कहानियाँ

सुरेश कांटक अनिल प्रभा कुमार लुइजी पीरांदेल्लो (इतालवी)



संरक्षक
इंद्रनाथ चौधुरी
स्वप्न चक्रवर्ती

संपादक
शंभुनाथ

प्रबंध संपादक
प्रदीप चोपड़ा

प्रकाशक
डॉ. कुसुम खेमानी

संपादन सहयोग
अंक सज्जा
सुशील कान्ति

संपादकीय विभाग
36 ए, शेक्सपियर सरणी
कोलकाता-700017
vagarth.hindi@gmail.com
7449503734

दिन 12 बजे से संध्या 6 बजे तक

आवरण
तारक नाथ राय

वार्षि

भारतीय भाषा परिषद की पत्रिका
वर्ष 26, अंक 299, 1–15 सितंबर 2020

डिजिटल महामारी और
पत्र-पत्रिकाएँ
संपादकीय 5



इस अंक में

बहस

महामारी बनाम महामानवता
सुधीर चंद्र/आदित्य निगम
प्रियदर्शन 44
(प्रस्तुति : मधु सिंह)



कहानियाँ

अब खामोशी नहीं :
सुरेश कांटक 65
दुनिया मेरे आगे :
अनिल प्रभा कुमार 76



कविताएँ

कौशल किशोर/अभिज्ञात
प्रतिभा/प्रदीप सैनी
काली प्रसाद जायसवाल
सुमन शेखार/प्रशांत किरार
विभा कुमारी/श्रीधर करुणानिधि
ब्रज श्रीवास्तव 14



विस्मृति से एतराज

एक क्रांतिकारी शिखा :
मन्मथ नाथ गुप्त :
सुधीर विद्यार्थी 102



विश्वदृष्टि

अंग्रेजी कविताएँ :

बेंजामिन जे फनाया

(अनुवाद : बालकृष्ण काबरा 'ऐतेश') 40

पुकारती ट्रेन (इतालवी) :

लुइजी पीरांडेल्लो

(अनुवाद : सत्यजीत प्रकाश) 94



मत-मतांतर 11

बतरस

मारवाड़ी राजबाड़ी :

कुसुम खेमानी 120



कृपया 'वागर्थ' ऑनलाइन मित्रों को शेयर करें।
लेखक सिर्फ अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।

सदस्यता संपर्क

साधारण डाक खर्च सहित वार्षिक सदस्यता : 300 रुपए

तीन साल : 850 रुपए

आजीवन : 3000 रुपए : विदेश : वार्षिक : 40 डॉलर

भारतीय भाषा परिषद के नाम से चेक या ड्राफ्ट भेजें

एजेंसियों और सदस्यों द्वारा चेक से भुगतान bharatiya bhasha parishad के नाम
या नेफट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,

A/c no- 81111974982, IFSC code-KKBK0006590 पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।
भुगतान के बाद एसएमएस कर दें—मो.9163372683 : मीनाक्षी दत्ता (सदस्यता और बिक्री)

डिजिटल महामारी और पत्र—पत्रिकाएँ

डिजिटल संसार का कोविड-19 के दौर में अचानक काफी विस्तार हुआ है। मुद्रित किए जा रहे हजारों की संख्या में समाचार पत्र और पत्रिकाएँ डिजिटल महामारी की शिकार हुई हैं। कोरोना की तरह डिजिटल संक्रमण अभूतपूर्व है। जो कई दशकों में होता न होता, वह कुछ महीनों में हो गया। इस दौर में मुद्रित होने वाले पत्रों और पत्रिकाओं को व्यापक अस्तित्वगत संकट से गुजरना पड़ा। कई अखबार स्मार्ट फोन पर आ गए। कई प्रकाशनों ने अपनी दुनिया समेट ली या वे ढीले हो गए। डिजिटल महामारी का पत्रकारों और लेखकों पर व्यापक असर पड़ा ही है, उसका मीडिया की स्वतंत्रता, पढ़ने की संस्कृति और ज्ञान निर्माण पर जो बुरा असर पड़ रहा है, उस पर बार-बार विचार करने की जरूरत है।

कोविड-19 का स्पष्ट फैलाव पूरी दुनिया में है। इसलिए पत्रकारिता और स्वतंत्र लेखन को हर देश में चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। लगता है, यह दौर एक तरह से भ्रामक प्रचार और सूचनाबंदी का है। टीवी के दिन अचानक फिर गए। टीवी स्क्रीन पर कोरोना संक्रमण और इससे हो रही मौतों की खबरों ने दुनिया की बाकी घटनाओं, विचारों और जीवन की अन्य तकलीफों को लगभग दबा दिया। इसके अनगिनत उदाहरण हैं कि कोरोना की वजह से खबरों की भूख जितनी बढ़ गई, दुनिया में उन पर अप्रत्यक्ष प्रतिबंध उतना ज्यादा हो गया।

महामारी की मौतों की तरह यह दुखद है कि समाचार पत्र हाशिए पर चले गए। कई स्तरों पर आर्थिक कहर टूटा। आमतौर पर पत्रकारों को न सिर्फ शांत कर दिया गया, बल्कि लाखों पत्रकार बेरोजगार हुए। उनके वेतन में कटौती हुई। अखबारों के हॉकर कोरोना-वाहक के रूप में देखे जाने लगे। कहीं-कहीं उन पर आक्रमण भी हुए। समाचार पत्रों को अपने कमजोर होते जा रहे ढांचे के साथ ॲनलाइन की शरण में आना पड़ा। उन्हें विज्ञापनों का भारी नुकसान हुआ।

बड़ी संख्या में लोगों ने ॲनलाइन दक्षता हासिल की। इन चीजों के साथ एक सचाई है कि सतही बातों, झूठा प्रचार और अज्ञानता निर्माण के लाखों अराजक केंद्र तैयार हो गए। अब वस्तुतः जवाबदेही नहीं होती और झूठ फैलाना अधिक आसान है।

स्त्री-शोषण का एक रूप है। वे जैसे रिमोट-संचालित यंत्र मानव हों!

समाज में पत्र-पत्रिकाओं का अपना बड़ा मूल्य है। वे मुद्रित रूप में अपेक्षाकृत अधिक आत्मीय, स्वतंत्र और अधिक विश्लेषणात्मक होती हैं। टीवी, यहाँ तक कि सोशल मीडिया की तुलना में वे अधिक प्रामाणिक लोकतांत्रिक जगहें हैं। ऐसे पत्र-पत्रिकाओं ने अपने लंबे साधनापूर्ण जीवन काल में पाठकों का भरोसा हासिल किया है। इनके जरिए मनमाने प्रचार की संभावना कम रहती है। ये विविध आवाजों के

दूसरी तरफ, खबरों पर टीवी चैनलों का एकाधिपत्य स्थापित हो गया। टीवी चैनलों पर विज्ञापन और अन्य दबावों के जरिए नियंत्रण भी बढ़ गया। यह सूचनाबंदी का एक रूप है। इसका यह नतीजा हुआ कि दर्शक चिल्लाती टीवी सुंदरियों से 24 घंटे, मसालों से भरी एक जैसी-एकरेखीय सूचनाएं पाने के लिए बाध्य कर दिए गए। वे डरते रहे और ऊबते भी रहे। निश्चय ही हर चैनल पर टिप्पोंप स्त्रियों को ही मुख्य समाचार वाचक बनाना और उनसे मनमाना प्रचार कराना

लिए ठोस जगह हैं। यहाँ लेखक अपनी स्वायत्ता को जिंदा रखते हैं। खासकर मुद्रित समाचार पत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं और पुस्तकों के बिना हम समाज में सभ्यता की कल्पना नहीं कर सकते।

कोरोना महामारी की वजह से प्रिंट से डिजिटल की ओर उन्मुखता बढ़ी, जिससे भारत में 20,000 करोड़ राशि का व्यवसाय प्रभावित हुआ। इससे सूचना और मनोरंजन की डिजिटल आवाजाही जरूर बढ़ी। सूचना मार्ग में स्थानीय दृश्यों के साथ दर्शकों की संख्या भी बढ़ी। बड़ी संख्या में

लोगों ने ऑनलाइन दक्षता हासिल की। इन चीजों के साथ एक सचाई यह भी है कि सतही बातों, झूठा प्रचार और अज्ञानता निर्माण के लाखों अराजक केंद्र तैयार हो गए। अब वस्तुतः जवाबदेही नहीं होती और झूठ फैलाना अधिक आसान है। आज का मंत्र है, मुनाफा होना चाहिए, चाहे जिस कीमत पर। इस रूप में ऐसा

संकट उपस्थित है कि कभी-कभी लगता है कि कुछ चीजें, कुछ सचाइयां अब बच नहीं सकेंगी। यह आशंका हमें बेचैन करती है।

निश्चय ही यह समय चिरस्थायी नहीं है। तो क्या कोविड-19 का संकट गुजर जाने के बाद हमें पहले का विश्व मिल जाएगा? ऐसा सोचना भी मूर्खता है। इस बीच धार्मिक आस्था, राजनीति और अर्थव्यवस्था में कोरोना से भयंकर वायरस घुस चुके हैं। आने वाले दिनों में हम भीषण अनिश्चितता और असहायता के बीच होंगे। पुरानी पटरियां उखड़ चुकी हैं, निश्चय ही सिद्धांतों और विचारधाराओं की भी!

हालांकि नई चुनौतियों के बीच नए अवसर भी हैं कि हम मानवता के पक्ष में हर सतही सोच से लड़ें। नवोन्मेष का परिचय दें और बढ़ते बहुतरफा संकट के बीच मिलजुल कर



राहें निकालें। निश्चय ही वे समाचार पत्र, लेखक और सामाजिक संगठन ऐसा कर सकते हैं जो विज्ञान की खोज सुदूर अतीत में नहीं भविष्य में करते हैं और अपनी राष्ट्रीय सोच में भेदभाव रहित मानवता को सर्वोच्च मूल्य मानते हैं। प्रिंट मीडिया के पाठकों की भगदड़ रोकी जा सकती है, अगर छोटे-छोटे स्वार्थों तथा वैचारिक कठमुल्लेपन से मुक्त होने की कोशिश हो।

डिजिटल महामारी की प्रभुत्ववादी आवाज है— मुद्रित समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और पुस्तकों को अपनी मौत मरने

दो। बल्कि उन्हें जला दो। इधर कला-साहित्य पर सरकारी खर्च सीमित कर दिया गया है। बड़े विज्ञापनों का बाजार आर्थिक वृद्धि में गिरावट की वजह से संकुचित है। इसकी संभावना है कि लाभदायक व्यवसाय न मानकर अब कई प्रकाशक साबुन बनाने लगें या छोटे स्वार्थों के लिए स्थानीय टीवी चैनल खोल लें। इसकी पूरी संभावना है कि सूचनाओं के कारपोरेट संसार राज्य सत्ता के राजनीतिक प्रचारक बन जाएं। उन्हें अब ज्यादा संवाददाताओं की जखरत नहीं है और स्वतंत्र चिंतकों की तो बिल्कुल नहीं। हर जगह जैसे वीरगाथा काल लौट आया है।

क्या आज दलित बोल सकते हैं, क्या स्त्रियां बोल सकती हैं, क्या आदिवासी बोल सकते हैं— ऐसे सभी सवालों से बड़ा सवाल यह है कि क्या डिजिटल महामारी में देश के आम मनुष्य बोल सकते हैं या वे सिर्फ सुनने के लिए बने हैं। इस हलचल भरे समय में ‘मनुष्य’ की कैटेगरी कहीं खो गई है, जिसे पाना होगा।

समग्रतः परिदृश्य यह है कि दुनिया के बहुत सारे बड़े

माने जाने वाले समाचार पत्र बंद हो रहे हैं या प्रसार संख्या और पृष्ठों की संख्या कम हो चुकी है। कई पत्रिकाएं स्थगित हैं। कई सूचना घराने अपना करोबार समेट रहे हैं या डिजिटल माध्यमांतरण हो रहा है। पुस्तकों का प्रकाशन धीमा है। अधिकांश लेखक फेसबुक या व्हाट्सएप पर अपने को खलास करके तुष्टि पा रहे हैं। काफी लोग अब घर से ही दफ्तर के काम ऑनलाइन कर ले रहे हैं। तेज गति से विकागजीकरण हो रहा है। ऐसे दृश्य मुद्रण उद्योग पर आर्थिक संकट के चिह्न हैं। ध्यान में रखना होगा कि इनके गंभीर सांस्कृतिक नतीजे भी हैं।

कोरोना महामारी ने चौथे खंभे को कितना जर्जर किया है, पाठकों की आदतों और रुचियों में कितना बदलाव कर डाला है या लोगों की सोच में कितनी उथलपुथल है, यह सब अंतिम रूप से आनेवाला समय बताएगा।

बड़े सूचना घराने पाठकों से अर्थ सहयोग मांग रहे हैं। गूगल पर ‘विकीपीडिया’ कटोरा लेकर खड़ा है, ‘अब तक आप गूगल पर सर्च करके मुफ्त में ज्ञान और सूचनाएं पाते रहे हैं। अनुरोध है कि आप कृपया 150 से 5000 रुपये तक अर्थ सहयोग करें ताकि हम टिक सकें। आप कृपया स्कॉल करके इस बात को उड़ा न दें।’ मैंने गूगल खोलने पर मांगी गई

जानकारी के साथ यह प्रेषित सूचना पढ़ी तो चौंक गया और कामना की कि यह फेक हो। इससे अंदाज लग जाना चाहिए कि सूचनाओं पर राजनीतिक के अलावा जबर्दस्त आर्थिक पहरा बैठनेवाला है। साधारण लोगों का सूचनाओं तक पहुंचना अब कठिन होता जाएगा, जबकि इनकी जरूरत बढ़ती जाएगी।

किसी बड़ी चुनौती के समय ही पता चलता है कि लेखन या पत्रकारिता में स्वतंत्र आवाज के लिए कितनी जगह है। कोरोना महामारी ने चौथे खंभे को कितना जर्जर किया है, पाठकों की आदतों और रुचियों में कितना बदलाव कर डाला है या लोगों की सोच में कितनी उथलपुथल है, यह सब अंतिम रूप से आनेवाला समय बताएगा। इतिहास से इतना

जरूर समझ में आता है कि 1897 और 1918 की महामारियां स्वेच्छाचारी अंग्रेजों का भीषण दमन लेकर आई थीं, आवाजें चुप कर दी गई थीं। लेकिन दोनों बार ही कुछ नया और अभूतपूर्व घटित हुआ। पहली बार तिलक उभरे और दूसरी बार गांधी ने नई राह दिखाई। महामारियां सभ्यता का बहुत कुछ धंस करती हैं तो उसमें नए जीवन के बीज भी डाल देती हैं। हर महामारी के बाद एक महान जीवन खड़ा होता है।

महाभारत की एक लोकप्रिय कथा है। अज्ञातवास में जंगल से गुजरते हुए पांडवों को एक बार तेज प्यास लगी।

सहदेव से कहा गया कि वह पानी की तलाश करें। पानी खोजते-खोजते वे एक जलाशय के करीब पहुंचे। उन्होंने पानी पीना चाहा, तभी जलाशय के स्वामी एक यक्ष ने पूछा- पहले मेरे प्रश्नों के जवाब दो। सहदेव प्रश्नों की अवहेलना कर बेफिक्री से पानी पीने लगे। वे उसी क्षण



निर्जीव हो गए। देर तक सहदेव नहीं लौटे तो उनकी तलाश में नकुल भेजे गए। नकुल ने भी प्रश्नों की उपेक्षा करके पानी पीना चाहा। वे भी निर्जीव हो गए। अर्जुन गए, फिर भीम गए। सभी का एक ही हश्च हुआ। अंत में सभी को खोजते युधिष्ठिर गए। उन्होंने प्रश्नों का सामना किया। पानी पीआ और बाकी सभी पांडवों का जीवन भी लौटाया। महामारी के दौर में सबसे जरूरी है प्रश्नों से भागना नहीं, उनका सामना करना!

युधिष्ठिर के सामने पहला प्रश्न यही था- ‘मैं कौन हूँ?’

शंभुनाथ



ई-पत्रिका के अपने फायदे हैं

विजय शर्मा, जमशेदपुर : ‘वागर्थ’ जुलाई 2020 पीडीएफ के रूप में अवतरित हुई। अब उसका अगस्त 2020 अंक आ पहुंचा है। इसमें पर्यावरण पर विचारोत्तेजक बहस, कहानियाँ, कविताएँ, बतरस और बहुत कुछ है। पेपर पर प्रकाशित पत्रिका को हाथ में लेने का मजा कुछ और होता है, आप उसे स्पर्श करते हैं, महसूसते हैं, उसे सूँघते हैं। जी हाँ, मेरी आदत है किताब-पत्रिका सबसे पहले सूँघती हूँ, उसकी अनोखी गंध मुझे बहुत भाती है। मगर ई-पत्रिका के भी अपने फायदे हैं। खासकर आपकी आँखों के लिए ये सहायक हैं। आप जरूरत के अनुसार फॉन्ट बड़ा कर सकते हैं, तुरंत कोई शब्द खोज सकते हैं।

ई-‘वागर्थ’ पा कर खुशी हुई। कंटेंट लाजवाब है, इसमें दो राय नहीं। पर इसका गेटअप कमाल का है। साज-सज्जा मनमोहक है। रंग-संयोजना आकर्षक और चमकीली है। मेरी बेटी अनंथा एक इंगिलिश पत्रिका में काम करती है। उसने देख कर लेआउट और गेटअप की प्रशंसा की तो लगा वाकई ‘वागर्थ’ एक मानक ई-पत्रिका के रूप में गर्व के योग्य निकली है। अब यह पाक्षिक निकलेगी यह और भी स्वागत योग्य है।

तबीयत से एक पत्थर वर्चुअल दुनिया में भारतीय भाषा परिषद ने उछाला है। ‘वागर्थ’ के लेखकों, संपादक और पूरी टीम को बधाई।

रचनाकार से ज्यादा महत्व उसकी रचना को दिया जाता है

सावन कुमार, पटना : ‘वागर्थ’ के अप्रैल-जुलाई 2020 अंक में मेरी पहली कहानी ‘अहाते की औरत’ प्रकाशित हुई। एक नवोदित रचनाकार की कहानी प्रकाशित करने के लिए आपको और वागर्थ टीम को

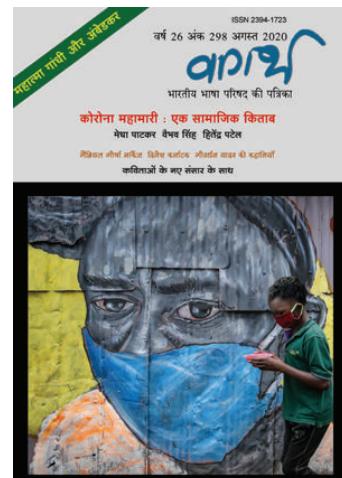
बहुत-बहुत धन्यवाद। वागर्थ की लोकतांत्रिक संपादकीय व्यवस्था मेरी दृष्टि में बेहद प्रशंसनीय है। मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि आपके यहाँ रचनाकार से ज्यादा महत्व उसकी रचना को दिया जाता है। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह पत्रिका अपने मानक को बनाए रखेगी और जल्द ही इसके अंकों की प्रति पूर्व की तरह ऑफलाइन भी पाठकों को पढ़ने के लिए उपलब्ध हो सकेगी।

कोरोना काल में करुणा बड़ी है या क्रूरा

भोला प्रसाद सिंह, काँचरापाड़ा : अगस्त 2020 में प्रकाशित ‘वागर्थ’ ऑनलाइन है। कोरोना-महासंकट के प्रभाव से जीवन का कोई अंग अछूता नहीं रह गया है। पत्र-पत्रिकाओं का ऑनलाइन प्रकाशन इसी प्रभाव का परिणाम है। लेकिन यह अंक तकनीकी दृष्टि से बेहतर और साफ-सुथरा है। मेरे जैसे उम्रदराज लोगों के लिए पढ़ने में काफी सुविधाजनक है। संक्षेप में इस ‘ऑनलाइन’ अंक की साज-सजावट आकर्षक और सुपाठ्य है।

इस अंक में दो कहानियाँ हैं, लेकिन मर्मस्पर्शी और संवेद्य। इनमें वर्तमान जीवन की परिस्थितियों के हृदयग्राही चित्र हैं। दिनेश कर्नाटक की ‘खोज’ और गोवर्धन यादव की ‘धर वापसी’ पाठकों के मन को संवेदनात्मक स्पर्श देने में सक्षम हैं। जाबिर हुसेन की कविताएँ लोकतांत्रिक व्यवस्था के छ्य में पनपती एकाधिकारवादी ताकतों को बेनकाब करती हैं। कविताओं में पारदर्शिता और सहजता है। राजनीतिक संदर्भ होते हुए भी नारेबाजी से मुक्त हैं।

गांधी और आंबेडकर का तुलनात्मक अध्ययन सूर्यनारायण रणसुभे की गहरी सूझ-बूझ और सचेत दृष्टि का उदाहरण है। इन दिनों दलित आंदोलन के विभिन्न खेमे की ओर गांधी को आंबेडकर-विरोधी, दलित-विरोधी साबित करने की मुहिम



चल पड़ी है। इस मुहिम की पृष्ठभूमि की सचाई को रणसुधेरे जी ने प्रमाणिक ढंग से रखने का प्रयास किया है।

‘कोरोना’ आज के समय की विश्वव्यापी वेदना है। ‘वागर्थ’ के वर्तमान अंक में मानवता के अंतःस्थल को हिला देने वाली समस्या पर एक गंभीर चर्चा मेधा पाटकर, वैभव सिंह और हिंतेंद्र पटेल ने अपने-अपने ढंग से रखी हैं। उनकी चर्चा पारदर्शी और दृष्टिसंपन्न है। हिंतेंद्र ने वर्तमान महामारी पर विचार करने के क्रम में अतीत में होने वाली महामारी के इतिहास का विश्लेषण भी किया है। एक मानवीय प्रश्न उठाया गया है कि कोरोना काल में करुणा बड़ी है या क्रूरता। निस्संदेह इस दृष्टि से कोरोना काल एक महाकाल साबित हुआ है। जीवित व्यक्ति की बात तो छोड़ दें- मरणासन्न और मृत व्यक्ति के साथ जैसी क्रूरता की गई या की जा रही है, वह मनुष्यता के इतिहास में चरम लज्जाजनक अध्याय है।

सामाजिक दूरी केवल बाहरी तौर पर ही नहीं बढ़ी है, बल्कि हृदय से भी हम एक-दूसरे से काफी अलग-थलग पड़ गए हैं। सामाजिक संबंध केवल शिथिल ही नहीं हुए हैं, बल्कि असामाजिकता और अमानवीयता हृद को पार कर चुकी है। मनुवादी व्यवस्था में स्थायी अछूत बनाए गए, लेकिन कोरोना का कहर किसे और कब समाज के लिए अछूत बना देगा, कहना मुश्किल है। महामारियों के इतिहास में मौत के बड़े-बड़े तांडव हुए हैं, लेकिन किसी ने अछूतों का नया वर्ग नहीं तैयार किया था।

अगस्त अंक वस्तुनिष्ठ, गंभीर और सहज पठनीय है

महेश जायसवाल, कोलकाता : ‘वागर्थ’ का अगस्त 2020 अंक। सबकुछ की तरह वस्तुनिष्ठ, गंभीर और सहज पठनीय है। जाबिर हुसैन की छोटी कविताएँ सत्सैया के दोहों की तरह बेधक हैं। मधु सिंह ने कोरोना-परिचर्चा को करीने से संयोजित किया है। गांधी-आंबेडकर के विवाद को सही परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है लेखक ने। सर्वाधिक ध्यानाकर्षित करती है, नई कलात्मक साज-सज्जा में इस अंक की प्रस्तुति। ‘वागर्थ’ टीम को बधाई।



कौशल किशोर

कवि, संस्कृतिकर्मी और
समीक्षक। 'रेवान्त' का
संपादन। कविता संग्रह 'वह
औरत नहीं महानद थी' और
'नयी शुरुआत'।

अंधेरा

वे नहीं जानते
कि कितना चले हैं अब तक
बस जानते हैं
कि कई दिन और कई रात
वे चलते रहे हैं, चलते ही रहे हैं
चलते-चलते पहुंचे हैं
अपने प्रदेश की राजधानी में
सुबह-सवेरे पहुंचते-पहुंचते
यहाँ जिंदगी की शाम हो गई
आगे अंधेरा
पीछे अंधेरा
बस, अंधेरा ही अंधेरा!

नींद

मेरी नींद चली गई है
रुठ कर घर बदल लिया है
उसके साथ मेरे सपने भी चले गए हैं
रात रात भर इंतजार करता हूँ
पर आती नहीं
लॉकडाउन में हूँ

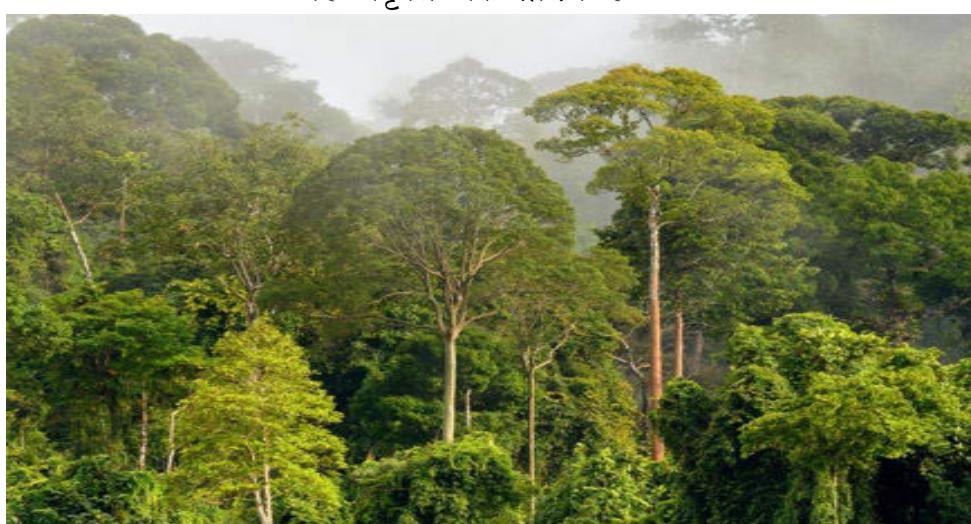
बाहर विचरण कर नहीं सकता
 वहाँ वायरस अपने शिकार की तलाश में है
 यह शरीर है कई बीमारियों का बसेरा
 एक डर है जिसने मन में बना लिया है डेरा
 रात अंधेरे में कट्टती है
 कुछ पढ़ना चाहता हूँ, पढ़ नहीं पाता
 मन उचटने लगता है तो
 कुछ देर सोशल मीडिया पर धूम आता हूँ
 बतिया आता हूँ
 लौट आता हूँ और
 बैठ जाता हूँ उसकी बगल में
 वह सो रही होती है मैं जागता हूँ
 वह नींद में होती है मैं निहारता हूँ
 चेहरा अंधेरे में भी रौशन है
 मानो काले बादलों के बीच
 चमकता चांद निकल आया है
 पत्तों के बीच फल झांक रहा है
 मैं अंधेरे की भाषा में
 उससे संवाद करना चाहता हूँ
 पर मुनासिब नहीं लगता
 कि कोई नींद में हो
 और मैं स्वार्थी बन जाऊँ
 वह कुछ बुद्बुदाती है



अस्फुट से शब्द निकलते हैं
 मतलब उसके पास नींद भी है
 और ख्वाब भी
 इस रेगिस्तान में हम
 तरस रहे हैं बूँद बूँद को
 नदी बह रही है
 उसमें आवेग भी है और धार भी।

सृजन और स्वतंत्रता

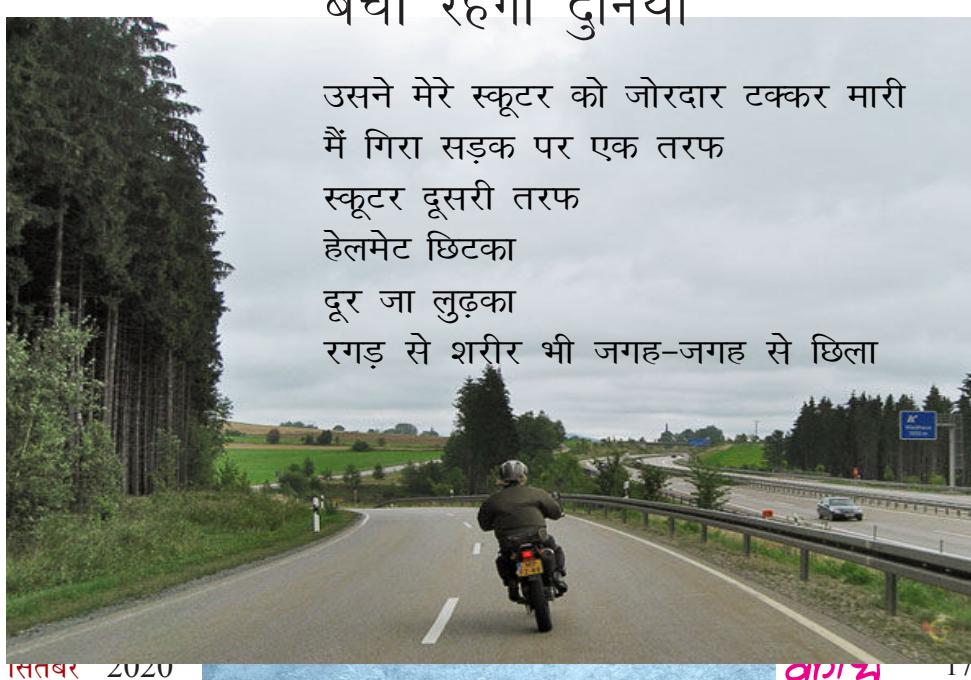
सृजन के लिए आवश्यक है स्वतंत्रता
 यह संघर्ष है प्रकृति में
 ऐसा ही होता है जीवन में
 धरती कितनी बदरंग थी बारिश से पहले
 चेहरे पर बुढ़ापे की झुर्रियाँ उग आई हों जैसे
 पेड़, पौधे, जीव-जंतु सब मरुआए से
 मुरझाए से
 और अब बारिश में
 कैसी हरी-भरी हो गई है धरती
 प्यासे को मिला पानी, सभी को मिला जीवन
 यौवन लौट आया है
 यह प्रकृति का सौदर्य है



यही है उसकी स्वतंत्रता
 ये कौन हैं जिन्हें पसंद नहीं
 धास का इस तरह
 धरती को आच्छादित करना
 पेड़ व पौधों का जैसी मर्जी हो उगना
 बेतरतीब फैलना
 लतर का दूसरे गाछ को सीढ़ी बना चढ़ना
 उनकी नजर में यह तो निरा जंगलीपन है
 वे चाहते हैं ये उर्गे
 फैलें और दिखें जैसा वे चाहें
 वे सभ्य, सुसंस्कृत
 इसीलिए लगे हैं कांट-छांट करने में
 धास के सीने पर चल रही है मशीन
 डालों पर कैचियाँ, पेड़ों पर आरियाँ
 वे अपने को प्रकृतिप्रेमी कहते हैं
 यह उनका कैसा प्रेम
 कि सृजन और स्वतंत्रता दोनों को लगे
 कि वे बंदिशों में हैं।

बची रहेगी दुनिया

उसने मेरे स्कूटर को जोरदार टक्कर मारी
 मैं गिरा सड़क पर एक तरफ
 स्कूटर दूसरी तरफ
 हेलमेट छिटका
 दूर जा लुढ़का
 रगड़ से शरीर भी जगह-जगह से छिला



फट गया शर्ट
 और घुटने पर पैंट
 मैं जमीन पर पड़ा था
 और देखता रहा उसे
 जिसने बाइक से टक्कर मारी थी
 बिना मुड़े, बिना देखे कि क्या है मेरा हाल
 रफ्तार तेज कर वह भागा
 आंखों से ओझल हो गया

मैं पड़ा था जमीन पर किंकर्तव्यविमूढ़-सा
 गाड़ियाँ मुझे बचाते हुए निकल रही थीं
 देखते ही देखते वहाँ भीड़ जमा हो गई
 किसी ने सहारा दे मुझे उठाया
 पास की दुकान में बैंच पर बिठाया
 कुछ मेरे स्कूटर को उठाने में लगे थे
 एक बच्चा दौड़ता हेलमेट लाया
 जो दूर लुढ़का पड़ा था

मेरे शरीर के उन जगहों की सफाई हुई
 वहाँ डिटौल लगाया गया
 पॉकिट का सामान बिखर गया था
 एक सज्जन ने उसे मेरे हवाले किया
 लोगों ने मुझे घर पहुंचाया और स्कूटर को भी
 अब मैं धिरा था अपने मोहल्ले के लोगों से
 कैसे हुआ, कहाँ हुआ



मारने वाला पकड़ा गया या भाग गया?
 यह जानने की उनकी उत्सुकता थी
 जैसे रिले रेस का धावक आगे की दौड़ के लिए
 स्टिक अगले खिलाड़ी को सौंपता है
 वैसे ही अब मैं अपने मोहल्ले के हवाले था
 जिन्होंने मेरे घावों की मरहम पट्टी करायी
 मुझे जिसने टक्कर मारी
 उसने मुड़कर भी नहीं देखा
 वह भागा जैसे कोई अपराधी भागता है
 पर जिन्होंने मुझे बचाया, सहारा दे उठाया
 सेवा शुश्रूषा की, घर तक पहुंचाया
 मेरे लिए दोनों अपरिचित थे
 मारने वाले भी, बचाने वाले भी
 दुनिया दोनों से भरी है
 एक उसे रक्तरंजित करता है
 तो दूसरा बनाता है खूबसूरत
 बचाने वाले बचे रहे, बढ़े उनकी पौध
 तभी बच्ची रहेगी दुनिया
 और बढ़ेगी उसकी खूबसूरती ।

एफ-3144, राजाजीपुरम, लखनऊ-226017
 मो.8400208031





अभिज्ञात

वरिष्ठ कवि और
कथाकार। अद्यतन
कविता संग्रह 'कुछ
दुःख, कुछ चुप्पियाँ'।
दैनिक 'सन्मार्ग' में
कार्यरत।

जहाँ जो छिप रहा है

सुनते हैं वह छिप रहा है
दरअसल वह बच रहा है
छिपने में ही बचना है

इन दिनों जिन्हें बिकना है
केवल उन्हीं को दिखना है
बचना है तो छिपो
छिपने और बचने में मामूली फर्क है
झुकने से बेहतर है छिपना

मौन को विपश्यना में तब्दील करना
एक साधना ही नहीं, कला भी है
जहाँ जो छिप रहा है

दरअसल वह झुकने से बच रहा है

दुनिया को छिपी हुई चीजों ने
किया है परास्त

भुट्टे ने बचाए हैं अपने दूधमुंहे दाने
कीट-पतंगों से

धूप व वर्षा की सीधी मार से

ललचाई नजरों के वार से

मुर्गी ने छिपा दिए हैं

खाट के अंधेरे कोने में अपने अंडे

कछुए ने बचाई है छिपकर अपनी समूची देह

बांसुरी ने अपनी तान छिपाई है
 अपने पोर के सप्तरागी छिद्रों में
 सितार और वायलिन के तारों ने छिपाए हैं
 अपने दर्दीले राग
 तबले ने अपनी मीड और गमक में
 छिपाई है अपनी ताल

 नाव की पेंदियों में छिपी रहती है
 अनवरत तैरने की ललक
 शब्दों में छिपे होते हैं गहन अर्थ
 पसीने में छिपी हैं श्रम की क्रूर गाथाएँ
 आंसुओं में छिपी हैं कथाएँ
 कांपते अधरों में अव्यक्त व्यथाएँ
 विदा करते लहराते हाथों में
 मिलन की असीम लालसाएँ
 सांपों के फन में छिपे हैं विष
 ऊँधते मजदूर की खैनी की हल्की थाप में
 छिपा है जांगर
 रेत के सीने में छिपा है
 दहाड़ मारते समुद्र का कातर क्रंदन
 यह जो छिपा हुआ है
 वहीं हैं सुजन की संभावनाएँ।

6 स्टेशन रोड, तीसरा फ्लोर, फैसी बाजार, टीटागढ़,
 कोलकाता-700119 मो.9830277656





प्रतिभा

कवि और
न्यायाधीश।

एक बटा दो संसार के ख्वाब

चाँद के चेहरे से
थोड़ी ताजगी उधार ले लो
उजाला चुटकी में भरकर
बढ़ा दो रौनकें इस शहर की
उदास धूप कौन देखेगा अगले दिन
हमें इसी शाम की किरचों से सजाने हैं
अलबत्ता ये नाखुश चेहरे
कल्पना में गुम होकर याद करना
सिरहाने उग आई है नींद की बेल
हाथों में मल लो रात की गहराई
और एक बटा दो संसार के ख्वाब
आओ चलो जीते हैं
दुनिया का बंटवारा करके
रात डाल दो मेरी झोली में
ख्वाबों भरी डाली तुम ले लो...



अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश
सिविल कोर्ट, बिहार शरीफ, नालंदा
बिहार- 803101, मो. 8544426808



प्रदीप सैनी

युवा कवि।
‘संभावना के स्वर’
में संकलित।

पार करना

तुम मेरे जीवन में नदी की तरह आई
मुझे तुम में छूब जाना था
अभागा हूँ मैं
आगे की यात्रा के लिए
प्रार्थनाएँ बुद्बुदाते हुए
मैंने तुम्हें एक पुल से पार किया।

गुड़ की डली

गूँगी नहीं हो जाती है आत्मा
न ही होश खोती है
सही गलत दिखता है उसे सब
बस वह बोल नहीं पाती है
प्रेम आत्मा के मुँह में घुलती
गुड़ की डली है।

इतना पवित्र था कि प्रेम ही हो सकता था

1.

यह पिछली सदी के
उम्मीद भरे आखिरी दिनों की बात है

सदी बदलने से तो यूँ
 बदलने वाला कुछ नहीं था
 पर जब तुम अचानक मिली
 मुझे यकीन हो चला था
 आने वाले समय में बेहतर होगी दुनिया
 विलुप्त हुई नदियाँ
 दंतकथाओं से निकल कर धरती पर बहेंगी
 बारूद सिर्फ दियासिलाई बनाने के काम आएगा
 ऐसे न जाने कितने सपनों ने
 औँखों में धोसला बना लिया था
 मैं साफ-साफ नहीं देख पाता था वक्त।



2.

तुम किसी आदिम प्यास के स्वप्न में
 मेरे भीतर की बावड़ी तक
 अनजाने ही आ गई थी
 वहाँ इतना निथरा था जल
 यकीनन उसमें
 रूप अपना ही देख तुम मुग्ध हुई
 वरना पास तुम्हारे
 वहाँ आने और बैठ जाने की
 वाजिब कोई वजह मौजूद नहीं थी
 तुम्हारा आना इतना अप्रत्याशित था
 मैं नहीं जानता था

किस नाम से पुकारँ तुम्हें
 तुम्हारी गंध को पहले-पहल
 मैंने खुशनुमा जंगल की देन समझा
 हड़बड़ाहट में
 मेरे बहुत ज्यादा बोलने के बाद भी
 तुम कुछ भी सुन नहीं पाई
 जानता ही कहाँ था मैं तब स्पर्श की भाषा।

3.

अपने लिए हल्की तरफदारी के साथ ही सही

आज भी याद है मुझे सब
और इस बीच दस बरस बीत गए हैं
और प्रेम
किसी वायरस की तरह
चिह्नित किया जा चुका है
बचाव के लिए हम सभी
खुद को स्मृतिहीन बना रहे हैं
कि कहीं दर्ज न हो पाएँ
एक काँपते हुए पल का थमा हुआ रंग
एक ऐसी ध्वनि जो गूँजती रहे ताउम्र
और काया से परे का कोई स्पर्श
बाकी सब भी
मिटाए जाने की सहूलियत के साथ
कुछ गीगाबाइट मेमोरी के हवाले रहे
सभी बदल रहे हैं लगातार
पर प्रेम नहीं
वह आज भी आपको
नष्ट करने की क्षमता रखता है
बावजूद इसके कि हम सभी
अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में लगे हैं।

4.

इन दस बरसों में
सभी दस अंकों की एक संख्या में
तब्दील हो गए हैं
लगातार चल रहा है
असंख्य संख्याओं के बीच
जमा-घटाव-गुणा-भाग
एक संख्या दूसरी से
इतना बतियाती है
जैसे अभी-अभी ईजाद हुई हो भाषा
खुदा का शुक्र था
जब हम मिले



संवाद कम
चुप्पियाँ ज्यादा बोलती थीं ।

5.

उस वक्त मेरे भीतर
सिर्फ कविताएँ थीं
रगों में खून नहीं स्याही दौड़ती थी
और कविताएँ धीरे-धीरे ही सही
हमारे बीच पुल बन गई थीं
उनसे होकर हम आ-जा सकते थे
एक-दूसरे के भीतर
कविताएँ तुम भी लिखती थी
अब नहीं लिखती होगी
सफेद पड़ चुके
हल्के गुलाबी रंग वाली स्मृतियों के साथ
उन्हें भी छोड़ दिया होगा तुमने
जैसे दुर्गम पहाड़ पर चढ़ने से पहले
पर्वतारोही आधार शिविर में छोड़ देता है
अगले सफर के लिए गैर-जरूरी हो गया
बहुत-सा सामान ।



6.

मुझसे बरस दो बरस उम्र में
छोटा होने के बावजूद
कितनी समझदार थी तुम
जान लिया था कि
नहीं जिया जा सकता उसके साथ
जो हमारे बीच
इतना पवित्र था कि प्रेम ही हो सकता था ।

7.

तुम्हारा जाना मेरे लिए
गहरी नींद से जगकर आंखें मलने जैसा था
मैंने दुनिया को नई नजर से देखा

इन कई बरसों में
 कठिन अभ्यास से अर्जित की है मैंने
 सामने घटित होते हुए को न देख पाने की दृष्टि
 सिर्फ उन आवाजों को पहचानने का हुनर
 जो मेरे पक्ष में है
 या जिन्हें अपने पक्ष में किया जा सकता है
 और भाषा का वह तिलिस्म
 जिससे अपनी आत्मा के सिवा
 सभी को छला जा सकता है
 हो सकता है किसी रोज
 तुम मेरे सामने से गुजरो
 और मैं तुम्हें देखूँ
 एक अपरिचित मुस्कान के साथ ।

चैंबर नंबर 145, कोर्ट कांप्लेक्स, पौंटा साहिब, जिला
 सिरमौर, हिमाचल प्रदेश-173025 मो.9418467632

- प्रकाशित रचनाओं से संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है
- ④ सर्वाधिकार सुरक्षित
- वागर्थ से संबंधित सभी विवाद कोलकाता न्यायालय के अधनी होगा।

प्रबंध : अमृता चतुर्वेदी

वितरण व अन्य कार्य : एस.पी. श्रीवास्तव, सूर्यदेव सिंह, अशोक बारीक,
बैद्यनाथ कमती, खेत्रावासी बारीक, संतोष सिंह, प्रदीप नायक, प्रेम नायक।



काली प्रसाद जायसवाल

कवि और समाजसेवी।



वे

जो सींचते हैं धरती को
अपने लहू से
पर रोज मरते भूख से

वे

जो पहाड़ों की सैर नहीं करते
पर अपने कंधे पे ढोते हैं पहाड़

वे

जिनके बच्चे रटते हैं पहाड़ा
पर कभी नहीं जोड़ पाएंगे
लाखों-करोड़ों का हिसाब

वे

जो पूछना चाहते हैं
क्यों उनकी अंधेरी गलियों को
एक दिया भी मयस्सर नहीं
और चौराहे
रोशनी से जगमगाते हैं
ऐसे लोगों के प्रश्न
संसद में नहीं पूछे जाते
क्योंकि, वे नहीं जानते
अपने वोट का मूल्य
जिस दिन वे जान जाएंगे
उस दिन संसद में प्रश्न
सिर्फ उनके ही पूछे जाएंगे।

22 सरकार लेन, कोलकाता-700007
मो.9831321257



लौटूंगा मैं

सुमन शेखर

युवा कवि। लेखन
के साथ ही रंगकर्म
में गहरी रुचि।
नाटकों के साथ कुछ
फिल्मों में अभिनय।

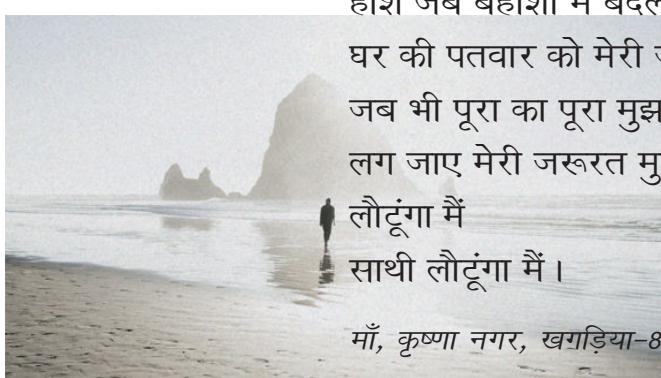
बीतते हुए सहर और
तारीखों के गुच्छों के बाद
कहीं दूर जब होगा हमारा सबेरा
लौटूंगा मैं
साथी लौटूंगा मैं

जब बादल रोने लगे
मेरे घर के सूनेपन से
कोई सुगबुगाहट होने लगे
घर की दीवारों पर
जब मेरी परछाई की कमियाँ सताने लगें
लौटूंगा मैं
साथी लौटूंगा मैं

किवाड़ों की कोरें
जब छोटी हो जाएँ
दूर से कहीं हल्के से झरोखे से दिख जाऊँ
जब दिन सुलगने लगे तुम्हारे
शामों में मेरा इंतजार हो
घर के किसी कोने को मेरी दरकार हो
लौटूंगा मैं
साथी लौटूंगा मैं

फिजाओं को मेरी कमियाँ खलने लगें
होश जब बेहोशी में बदलने लगे
घर की पतवार को मेरी जरूरत लगे
जब भी पूरा का पूरा मुझको 'मैं' की खबर लगे
लग जाए मेरी जरूरत मुझको
लौटूंगा मैं
साथी लौटूंगा मैं।

माँ, कृष्णा नगर, खगड़िया-851204 मो.8877225078





प्रशांत किरार

कवि और वरिष्ठ
अनुवादक।

भाषा

1.

गेहूँ के खेत के बीच खड़ी है वह औरत
उस भाषा के साथ
जो सीखी थी उसने बचपन में
और जिसे अब वह भूल गई है
सामान्यतः यहीं होता है कि
उम्र बढ़ने के साथ
भाषा पका करती है
लेकिन गांव की औरतों के मामले में
ऐसा नहीं होता
जीवन भर वह बहुत-सी भाषाएँ भूल कर
बहुत-सी भाषाएँ सीखा करती हैं
(काश उन भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची
में जगह मिल पाती तो गांव की औरतों के लिए
कुछ बेहतर हो पाता)

भाषा

इंसान के लिए माध्यम है
लेकिन गेहूँ के खेत में खड़ी
गांव की औरत
भाषा के लिए माध्यम है।

2.

अक्सर सुनता हूँ कि
एक औरत की पीड़ा को
दूसरी औरत ही समझती है
आदमी नहीं समझता
क्योंकि आदमी को

या तो हिंदी आती है
 या पंजाबी या उर्दू या बांगला या तमिल
 कुल मिलाकर आदमी को सिर्फ
 22 भाषाएँ आती हैं
 उनके अतिरिक्त आदमी
 कोई भाषा नहीं जानता
 जबकि औरत
 हर भाषा के साथ एक अतिरिक्त भाषा जानती है
 जिसे बचपन से वह
 अपने मौन की कक्षा में सीखा करती है
 अतः उसकी पीड़ा
 न हिंदी में व्यक्त होती है
 न उर्दू में न पंजाबी में
 और न ही तमिल-तेलुगु में।

3.



खेत में कौए आ बैठे हैं
 खेत के बाहर खड़े बच्चे दौड़े आए हैं
 वे बच्चे दो ही भाषाएँ जानते हैं
 एक बाप की
 एक माँ की
 जो गुस्से में बाप की
 और प्यार में माँ की भाषा बोलते हैं
 वे अब खेत में कौओं को उड़ाते समय
 दोनों भाषाएँ बोल रहे हैं
 बाप की भी, माँ की भी।

वरिष्ठ अनुवादक, कार्यालय प्रधान महालेखाकार (सामान्य एवं
 सामाजिक क्षेत्र लेखापरीक्षा) ३०१ काता, ट्रेजरी भवन, २, गवर्नर्मेंट
 प्लेस



विभा कुमारी

युवा हिंदी और मैथिली
कवि। अद्यतन कविता
संग्रह 'स्वयं अपने लिए',
(हिंदी) 'सिनेहक डोरि'
(मैथिली)।

बच के रहना तुम

तुम बच के रहना उनसे जो निहायत सज्जन हैं
नहीं जानते हैं छह-पांच
बहुत आसानी से ठग लेते हो जिन्हें
उनसे बिलकुल बच के रहना तुम
याद रहे जिनके दिल अबोध बच्चों जैसे हैं
जो दूर हैं छल-कपट की दुनिया से
जिन्हें आता ही नहीं है नौ-छौ करना
निश्चित ही बच के रहना उनसे
छेड़ना मत उन्हें
हाथ भी न लगाना भूल कर
जो तुम्हारे पूर्वजों द्वारा भी सताए गए हैं
तुम्हारी गाली खा जो चुप रह गए
तुम्हारे द्वारा थप्पड़ लगाने पर
गाल पकड़ कर रोए
किंतु पलट कर नहीं मारा तुम्हें
याद रखो समझ लो
बच के रहना उनसे
जिनकी मजदूरी तुम पचा गए
जन्म भर की जमा-पूँजी खा गए
जिनके पैसे लेकर बैठ गए और भरोसा खा गए
जिनके रास्तों के आड़े आ गए तुम
जिनका इस्तेमाल किया तुमने
तेल-साबुन की तरह
देख लो बच के रहना पड़ेगा तुम्हें उनसे
जिनकी विनम्रता को समझ बैठे तुम कमजोरी
जिनके घर तुम करते रहे दिन-रात चोरी
जो गरीब होकर भी उदार हैं

कृपणता के स्वामी सुनो
 उनसे बच के ही रहना तुम
 जिन्हें नहीं आता झूठ बोलना
 नहीं हैं जिनके पास सैकड़ों चेहरे
 जो गिरगिट की तरह रंग बदलना नहीं जानते
 उनसे बच के रहना तुम
 जिनके दिल पारदर्शी हैं स्वच्छ जल की तरह
 जो सह लेते हैं सबकुछ धरती की तरह
 जिन पर पांव रखकर चढ़ते हो तुम सीढ़ी की तरह
 खबरदार! उनसे बच के रहना तुम
 अभावों में मुस्कराने वाले
 दूसरों का बोझ कंधों पर ढोने वाले
 कुली-कबाड़ी, मजदूर, बेलदार कह

संबोधित करते हो जिन्हें



उनसे पूरी तरह बच के ही रहना तुम
 विरासत में जिन्हें चाँदी का चम्मच नहीं
 खुरपी-कुदालें मिली हैं
 जिनके सिर पर छप्पड़ तक नहीं
 देह नंगी, और पेट पीठ में धँसा है
 मन में है तूफान
 फिर भी होंठ सिले हैं

उनसे बच के रहना तुम
 जो सच्चे हैं सीधे हैं
 भोले-भाले
 बहुत ही अच्छे हैं
 आसानी से मान लेते हैं तुम्हारी बात
 उनसे बच के ही रहना तुम
 जो तुम्हारे जूते से कुचले जाने पर भी जिंदा बच गए
 तुम्हारी लाठी खाकर भी दम नहीं तोड़ा
 सिर्फ धायल हुए
 जो रखते हैं माद्दा सीने पर गोली खाने का

उनसे बच के रहना तुम
 हाँ-हाँ उनसे बच के ही रहना
 क्योंकि जिस दिन टूट जाएगा उनके सब्र का बाँध
 कर देंगे तुम्हें बेनकाब
 मुँह छुपाने की भी जगह नहीं मिलेगी तुम्हें
 मारेंगे धूसकर तुम्हें तुम्हारे ही घर में
 फाड़ देंगे तुम्हारी छाती
 करेंगे हिसाब तुम्हारे एक-एक कुकृत्य का
 इसीलिए बेहतर है कि उनसे बच के ही रहना तुम



बच कर रहना उनसे
 जो चलकर आए हैं अपने पैरों पर
 फट गए हैं जिनके जूते
 धिस गए हैं तलवे
 बिवाई भरी हैं एड़ियाँ
 गिरते-पड़ते छिल गए हैं जिनके
 घुटने, हथेली और मुँह
 उनसे बच के रहना तुम
 भूखे पेट, व्यासे गले और जागती ओँखों से
 जिसने जिया है संघर्ष को
 रोते-रोते रुँध गई है आवाज
 बलगम भरी छाती
 इलाज और पोषण के अभाव में हो गई है छलनी
 उनकी ताकत का अंदाजा कहाँ हो सकता है तुम्हें
 इसलिए तुम उनसे बच के रहना
 जिनके पास न थाली है न रोटी
 सब्जी-साग और सालन ख्वाब तक में नहीं है
 हाथ मत साफ करना उनके चने-चबेने पर
 सावधान! बस उनसे बच के रहना तुम।

मकान सं 14, गली सं 1, भगवान पार्क, झरौदा, बुराड़ी, दिल्ली-84,
 मो. 8800270718



श्रीधर करुणानिधि

गया कॉलेज में सहायक प्रोफेसर

सिर पर रायफल की नोंक

अपने ही दुखों को हम
अपनी पीठ पर ढोते रहे
औरों के दर्द को हमने
जंगली पशुओं की तरह दुत्कार दिया
कभी नहीं जान सके इसका मकसद
कि हमारे आगे-पीछे, बाएं-दाएं
संगीनों के साए क्यों मंडराते हैं?
कौन हमारे चौराहों और सड़कों पर
कपर्यू लगाता है?
कौन रिश्तों के साथ असली मुद्दों को
विस्थापित करता है?
कौन इतनी शांति स्थापित करता है
कि गोलियों की तड़तड़ाहट की आवाजें भी
हमें सुनाई नहीं पड़तीं?
हमने अपनी आँखों को
किनकी दया पर छोड़ दिया है?
हमारी दृष्टि की कोर में
बारूद का धुआँ कैसे भर रहा है
किसने हमें खुद से विस्थापित कर दिया है
एक पीड़ा आवाज की तरह कहती है
अपने सिर को कभी रायफलों की नोक पर लाओ

अपने घर को कभी आग की जद में आने दो
 एक कड़कती आवाज को
 अपनी मिमियाती जुबान पर
 बूटों की धमक के साथ चढ़ जाने दो
 कभी अपनी गलियों से निकलो तो
 सत्ता के नुमाइंदों से कह कर कि
 अपने दोस्त से मिलने जा रहे हो
 हिम्मत के साथ खांसकर कि
 कफर्यू तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता
 एक दिन भी सह कर देखो
 कि नींद में ही सही
 चारों ओर बिठाए गए पहरों के बीच
 विस्थापन से निकलने की
 छटपटाहट भरी तुम्हारी आवाज
 किसी और के दर्द से कैसे भींग जाती है
 किसी कफर्यूग्रस्त चौराहे पर...।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गया कालेज, गया।
 मो. 9709719758



अभिजीत सेनगुप्त



ब्रज श्रीवास्तव

वरिष्ठ कवि । तीन कविता संग्रह
प्रकाशित । अनुवाद सहित अन्य
विधाओं में भी काम ।

माँ का मोबाइल

आज इंतजार ही रहा
पर नहीं आया माँ का फोन
जखर चार्ज नहीं हो पाया होगा
सुबह से सभी बच्चों से बात
करते-करते हो गया होगा डिस्चार्ज
माँ आखिर सीख ही गई
फोन संभालना
चश्मे से देखकर जब वह
खोजती है बेटी का नंबर
अद्भुत दृश्य होता है
जैसे मिलने ही वाला हो उनको
राहत का खजाना
कहीं जाते समय अब
दवाई के बैग के साथ-साथ
मोबाइल और चार्जर रखना
नहीं भूलती वह
दूर बैठे बच्चों को फोन नहीं लग पाना
यानी अधूरी रह जाना
दिनचर्या है माँ के लिए
सबको साथ देखने की
तलब कुछ तो कम हो जाती है



जी भर के बतिया लेने से
सत्तर की उमर में
यही संवाद ही तो है
जो माँ की खुशी की पौध में
पानी सोचता है
सबको सबसे है
हाल चाल नहीं पूछने की शिकायत
पर माँ ने अपने
मोबाइल से जोड़ रखा है रिश्तों को
माँ से नहीं है
किसी को शिकायत ।

नया घर

उस घर में किताबें छूट गईं
इस घर में हमारे साथ टीवी आया
बड़ा वाला आईना छूट गया
एक रोशनदान छूट गया
गाय के रंभाने का दृश्य छूट गया

मंदिर की आरती की आवाजें छूट गईं

कामवाली बाई छूट गई

छूट गया दूधवाला

अखबारवाला बिछड़ गया

लेकिन वही अखबार

इस घर में रोजाना आ रहा है

बहुत सारा समय छूट गया

उस घर में

इस घर में हमारे साथ नए समय का

एक नमूना आया

इसमें नए टाइल्स हैं और

छोटा-सा बगीचा है और

सामने बनते हुए नए-नए बंगले हैं

उस घर में भाई छूट गया

पड़ोसी भी छूट गए

और कुछ बच्चे भी

जो बाहर खेलते हुए

ध्यान खींचते थे

आ तो गई माँ साथ

लेकिन उसका भी

आधा मन

तो उस घर में ही छूट गया ।

एल-40, गोदावरी ग्रीन कालोनी, विदिशा

पिन-464001 मो.9425034312





बेंजामिन जेफनाया

अफ्रीकी मूल के प्रमुख
कवि। 'द टाइम्स' द्वारा 50
श्रेष्ठ युद्धोत्तर लेखकों की
सूची में शामिल।

अनुवाद बालकृष्ण काबरा 'एतेश'

सीवर में बच्चे

किसी को नहीं पता
रहते हैं कितने बच्चे
बदबूदार सीवर में
विशेषज्ञ भूल चुके हैं गिनती
कितने बच्चे माँगते हैं भीख
करते हैं चोरी और
मर जाते हैं बदबूदार सीवर में
कुछ लोग उन बच्चों को बच्चा नहीं कहते
जो रहते हैं सीवर में
वे कहते हैं उन्हें बदमाश और गंदा
आवारा और चोर
वे नहीं समझ पाते हैं
कैसा होता है कोनों और कोटरों में रहना
इससे पहले कि पता चले
वे हो सकते हैं उनके बच्चे
वे वहाँ से गुजरते हैं, बढ़ जाते हैं आगे
और करते हैं उपेक्षा उन बच्चों की
मदद करने को अनिच्छुक
वे कर लेते हैं स्वयं को व्यस्त
इतने व्यस्त कि मदद न कर सकें
वे स्वयं को छिपा लेते हैं बड़े मकानों
बड़ी कारों, भारी पैसों और बड़े स्विमिंग पूलों में
होती है बड़ी उनकी चहारदीवारी

जो देखने से रोकती है उन्हें
 उन छोटे बच्चों को
 जो रहते हैं बदबूदार सीवरों में
 सीवर में रहने वाले बच्चों से पूछो
 वे क्यों रहते हैं सीवरों में
 और आप सुनेंगे दहशत भरी कहानियाँ
 प्रेम-विहीन जीवन की कहानियाँ
 ठुकराए जाने की कहानियाँ
 दुर्व्यवहार की कहानियाँ
 उन बच्चों का था एक ही दोष
 कि उनके माता-पिता थे बुरे

अतः यदि आपके शहर में
 सीवरों में रहते हैं बच्चे
 या यदि टेलीविजन पर

आप देखते हैं सीवरों में रहते बच्चे

तो इससे पहले कि आप
वहाँ से गुजर जाएँ या चैनल बदलें
जरा ध्यान दें

कि यह होगी भाग्य की बात
कि आप सोचें

आपकी गंदगी कहाँ जा रही है
सोचें कि जिसकी जरूरत नहीं
उसके साथ क्या करते हैं आप

और रखें यह भी याद
 कि सीवर नहीं बनाए गए हैं
 बच्चों के लिए
 नहीं बताएँगे वे बेरहम घर और परिवार
 जो नहीं करते बच्चों की परवाह
 या जो नहीं करते बच्चों का आदर
 इसके लिए आपको जरूरत नहीं
 विश्व स्वास्थ्य संगठन की
 जो यह बताए कि एक सीवर होता है



शहर की एक सबसे असुरक्षित जगह
किंतु कुछ बच्चे पाते हैं कि
एक बदबूदार, असुरक्षित सीवर ही है
उनके लिए सबसे सुरक्षित जगह ।

बताता हूँ मैं

मैंने जाना कि समानता का मतलब
जरूरी नहीं कि हो स्वतंत्रता
और स्वतंत्रता का मतलब हो मुक्ति
मित्र, तुम वोट दे सकते हो
पर जरूरी नहीं है कि मिले लोकतंत्र
प्रिय पड़ोसी, साथ होने का मतलब
जरूरी नहीं कि हो एकता
आपके दमनकर्ता

आपको दे सकते हैं अपना भाग्य

आजमाने

पर नहीं देंगे वे कोई अवसर
जिस राष्ट्र में आप रहते हैं
उसकी हो सकती है अपनी राष्ट्रीय
सुरक्षा
किंतु आप बिना संरक्षण के
हो सकते हैं राष्ट्रविहीन



मेरे मित्र तुम्हें नहीं है जरूरत
अपने नेता का अनुसरण करने की
सरकार के लिए जरूरी नहीं है आपको
संभालना

श्रम विभाग मैं तुमसे कह रहा हूँ
तुम बड़े हो कानून से
तुम हो सही जबकि कानून नहीं
देखो, तुम यह जानते हो कि न्यू लेबर*
परवाह नहीं करती वरिष्ठ श्रमिकों की

तुम यह भी जान सकते हो कि
परिवर्तन का मतलब
जरूरी नहीं कि हो क्रांति
एक बार जब तुम यह जान जाते हो कि
पुराने खड़ीवादियों के पास
स्वयं को बचाने के लिए नहीं बचा है कुछ
तुम यह भी जान सकते हो कि
सभी राजनेता करते हैं

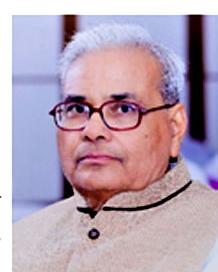


एक समान रूप से शोषण
बेबीलोन को जलना चाहिए
जलो बेबीलोन, जलो!
राजनीति होती ही है इस तरह
जिंदगी होती ही है इस तरह
बुद्धि का मतलब जरूरी नहीं है
होना बुद्धिमत्तापूर्ण

जरूरी नहीं कि समाचार हो नया
हम जहाँ के भी हों
जागते रहने का मतलब
जरूरी नहीं कि हो
जागरूक होना।

*न्यू लेबर : न्यू लेबर का संदर्भ ब्रिटिश लेबर पार्टी से है। वर्ष 1990 के मध्य से वर्ष 2010 तक ब्रिटिश लेबर पार्टी ने टोनी ब्लेयर और गॉर्डन ब्राउन के नेतृत्व में 'न्यू लेबर' के नाम से शासन किया।

बालकृष्ण काबरा 'ऐतेश'
कवि और अनुवादक। अद्यतन कविता
संचयन 'छिपेगा कुछ नहीं यहाँ'।



बालकृष्ण काबरा 'ऐतेश', 11, सूर्या अपार्टमेंट, रिंग
रोड, राणाप्रताप नगर, नागपुर -440022 मो. 9422811671



मधु सिंह
विद्यासागर विश्वविद्यालय,
मेदिनीपुर में शोध छात्रा।
कोलकाता के खुदीराम बोस
कॉलेज में प्राध्यापन।

कोरोना महामारी : एक सामाजिक किताब महामारी बनाम महामानवता

प्रस्तुति : मधु सिंह

कोरोना वायरस से निजात पाने के लिए दुनिया में जंग जारी है। इसके साथ विचारों की दुनिया में भी एक गहरा आलोड़न है। हमारे सामाजिक और पर्यावरण संबंधी दृष्टिकोण में बड़ा बदलाव आ रहा है। जब मानव जाति एक नए मोड़ पर खड़ी है, इस दौर की विडंबनाओं, चुनौतियों और अवसरों को नए ढंग से समझना होगा। ‘वागर्थ’ के अगस्त अंक में आप पढ़ चुके हैं मेधा पाटकर, वैभव सिंह और हितेंद्र पटेल के विचार। यहाँ प्रस्तुत है प्रसिद्ध समाजवैज्ञानिक और चिंतक सुधीर चंद्र, आदित्य निगम और प्रियदर्शन के विचार। आप नए मुद्दे लाकर चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए सादर आमंत्रित हैं।

20/1, खरोंद्र चटर्जी रोड, काशीपुर, कोलकाता-700002
मो.9883613002



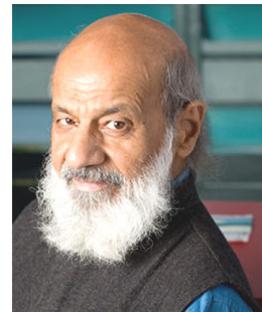
कारोना समय : कुछ चिंताएँ

एक नहीं सैकड़ों हनुमान निकल पड़े हैं संजीवनी बूटी के लिए!

कोविड-19 से उत्पन्न संकट को एक विरोधाभास के सहारे समझा जा सकता है। यह संकट अभूतपूर्व है। वैशिवक महामारियाँ पहले भी हुई हैं। उन पर बहुत कुछ लिखा भी गया है। सौ साल पहले हुए 1918–20 के विश्वव्यापी फ्लू की चर्चा आजकल खास तौर से हो रही है। न केवल चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से, बल्कि संकट काल में मानवीय आचरण, सामाजिक-सांस्कृतिक-धार्मिक संस्थाओं के व्यवहार, और शासक-शासित संबंधों जैसे महत्वपूर्ण विषयों के परिप्रेक्ष्य में भी महामारियों का अध्ययन किया गया है। लेकिन कोविड-19 जैसा संकट पहले नहीं आया, आ भी नहीं सकता था। और कुछ नहीं तो अंतरराष्ट्रीय आवागमन की आज जैसी सुविधाएँ जरूरी थीं ऐसे संकट के आगमन के लिए।

किंतु विरोधाभास यह है कि सूरज के तले नया कुछ भी नहीं होता। यह संकट भी नया नहीं है। बस लगता है नया। मानव ने प्रगति के नाम पर अबाध विकास की जो अंधी दौड़ चला रखी है उसका एक पड़ाव भर है यह। एक लंबी शृंखला की एक कड़ी मात्रा है।

कोविड-19 संकट के इस सत्य को न देख, केवल इसके अभूतपूर्व रूप को देखने वाले लोग इसे अननुमेय और अप्रत्याशित मान रहे हैं। एक अननुमेय और अप्रत्याशित प्राकृतिक आपदा। यह आपदा प्राकृतिक नहीं है, मानवकृत है। हमें से बहुतों को इसका अननुमेय और अप्रत्याशित लगना इसके वास्तव में अननुमेय और अप्रत्याशित होने का सबूत नहीं है। वह सबूत है हमारे अज्ञान का। अज्ञान का इस्तेमाल तल्ख लगे तो मासूमियत कह लीजिए उसे।



सुधीर चंद्र

प्रसिद्ध समाज
वैज्ञानिक और
चिंतक। अद्यतन
संपादित पुस्तक
'वायलेंस एंड
नॉनवायलेंस अक्रोस
टाइम : रिलिजन,
कल्चर एंड हिस्ट्री'।

एक छोटा-सा सवाल भी कर लीजिए अपने आप से- क्या यह मुमकिन है कि विज्ञान बाजार के रूप में सारी पृथ्वी को एक वैश्विक ग्राम बना दे - हम जहाँ से चाहेंगे सस्ता माल खरीदेंगे, जहाँ सस्ते से सस्ता श्रम मिलेगा वहाँ अपना माल बनवाएंगे, और पूरे विश्व में उसे बेचेंगे - लेकिन वाइरस जैसे खतरों को और उनसे होने वाले संक्रमण को पुरानी सीमाओं में ही कैद किए रहेंगे? ऐसा सीधा-सरल सवाल भूल गए हम, और सपने संजोने में दुःखजों की संभावना ही खारिज कर दी हमने। अब दावा कर रहे हैं कि अननुमेय और अप्रत्याशित थी यह आपदा। प्रकृति का प्रकोप है!

इसे प्रकृति का प्रकोप मानने में ही इसकी और इस जैसी अन्य आपदाओं की जड़ है। कोई आपदा अगर प्राकृतिक है तो उसके लिए जिम्मेदार प्रकृति ही है, मानव नहीं। उलटे वह आपदा विवश कर देती है मानव को प्रकृति पर विजय पाने के लिए। सो मानव अपने विज्ञान के सहारे, और उसके अहंकार में, लग जाता है प्रकृति को जितना पराजित कर चुका है उससे और ज्यादा पराजित करने में, जबकि इस आपदा का कारण ही है प्रकृति को पराजित करने का अथक आयोजन। प्रकृति की पराजय का अगला चरण इस आपदा पर विजय नहीं तो विजय का भ्रम दिला ही देगा। उसके साथ उसका अनिवार्य फल - एक और संभवतः इससे भी विकट, आपदा - भी आएगा ही।

बड़ी तेजी से आजकल प्रचलन में आ गए एक शब्द - युद्ध - के माध्यम से बात थोड़ी और खुल सकती है। कोविड-19, अर्थात् प्रकृति के विरुद्ध युद्ध में रत है इस समय मानव जगत। जल्दी ही हमारे वैज्ञानिक कोविड-19 से बचाने वाला वैक्सीन बना लेंगे और, इशाअल्लाह, उसका उपचार भी खोज लेंगे। पर क्या उससे हमें विजय मिल जाएगी, और युद्ध

मानव अपने विज्ञान के सहारे, और उसके अहंकार में, लग जाता है प्रकृति को जितना पराजित कर चुका है उससे और ज्यादा पराजित करने में, जबकि इस आपदा का कारण ही है प्रकृति को पराजित करने का अथक आयोजन।

समाप्त हो जाएगा? कोई इकतरफा युद्ध तो है नहीं यह। कोई युद्ध इकतरफा नहीं होता। जब हम अपने आपसे लड़ते हैं तब भी लड़ाई इकतरफा नहीं होती। यहाँ तो युद्ध प्रकृति से है। उस वाइरस से जो मानव से कहीं ज्यादा पुराना और ताकतवर है। नित नए अवतार धारण करता शत्रु है यह। एक से निबट नहीं पाते कि दूसरा अवतार आक्रमण कर देता है।

गांधी ने कहा था, ‘हिंसा का जवाब हिंसा से देने के कारण ही दुनिया ऐटम बम तक पहुँच गई है।’ ऐटम बम को बहुत पीछे छोड़ इस बीच दुनिया और अदि-

एक संहारकारी अस्त्रों को इकट्ठा किए बैठी है। पर कितने लोग हिंसा करते समय या हिंसा का जवाब हिंसा से देते समय हिंसा-प्रतिहिंसा के दुश्चक्र की इस अनिवार्य फलश्रुति के बारे में सोचते हैं? वैसा ही विनाशकारी दुश्चक्र मानव और प्रकृति के अनथक युद्ध के फलस्वरूप चल रहा है।

इस वैश्विक संकट के वक्त जोरों से चल रही कुछ बातों पर जरा गौर करिए। खैरियत मनाई जा रही है

कि लोगों का विश्वास फिर से विज्ञान में वापस आ रहा है। वे समझ रहे हैं कि संकट की इस घड़ी में विशेषज्ञों, खास तौर से चिकित्सा विज्ञान के विशेषज्ञों और अनुसंधान कर्ताओं, को जिम्मेदारी सौंपनी पड़ेगी। वैक्सीन पर लगी है सब की आस। एक नहीं अनेक हनुमान निकले हुए हैं संजीवनी बूटी लाने के लिए। विशालकाय फर्मास्यूटिकल कंपनियों के बीच परदों के पीछे चल रही उस भयंकर होड़ के बारे में अभी चूँतक नहीं हो रही, जिसका मुनाफे के लिए होने वाला तांडव जल्दी ही हमारे सामने आनेवाला है। तब समझ में आएगा कि वैक्सीन आम आदमी को कब मुहैया हो पाएगी। इस समय पोलिओ और बीसीजी के वैक्सीन से हुए चमत्कार की बड़ी चर्चा है। थोड़ा याद कर लें कि अवाम तक पहुँचने में कितना वक्त लिया था इन दोनों ने।



इसी संदर्भ में यह भी सोचें कि हमारे देखते-देखते बमुशिकल दो से तीन दशकों में सरकारी अस्पतालों की क्या गत बना दी गई है और स्वास्थ्य सेवाओं का अमानवीय मुनाफाखोरी के लिए कैसा निजीकरण हुआ है। चिकित्सा और चिकित्सक का जैसा धिनौना धंधा बन गया है, उनके और फर्मास्यूटिकल कंपनियों के बीच जो अनैतिक साँठगाँठ हो गई है और सत्ता का जैसा वरद हस्त उन्हें प्राप्त है, उसके चलते आम आदमियों, औरतों और बच्चों को कौन सी संजीवनी बूटी मिलने जा रही है? इस संकट में और इस संकट के बाद? देश भर के अस्पतालों में उपलब्ध कुल बिस्तरों का दो तिहाई निजी अस्पतालों में है और बचाखुचा एक तिहाई दुर्गति को प्राप्त सरकारी अस्पतालों में। मध्य-वर्ग समेत देश के कौन लोग, बगैर बर्बाद हुए, निजी अस्पतालों में जाने की स्थिति में हैं?

कोविड-19 के उद्गम को लेकर भी बड़ी चर्चा चल रही है। रोग चीन के वृद्धान में शुरू हुआ और वर्ही से संक्रमण फैला, यह तो निश्चित है। पर शुरू हुआ कैसे? जंगली जानवरों की बिक्री करने वाले वहाँ के बाजार से, या बायलोजिकल अस्त्र बनाने के लिए वहाँ हो रहे किसी खतरनाक परीक्षण से? संदेह का आलम यह है कि न केवल चीन, बल्कि विश्व स्वास्थ्य संगठन को लेकर भी षड्यंत्र के आरोपों का बाजार गरम है।

असलियत जब सामने आएगी तब आएगी, लेकिन कोविड-19 पर कारगर चर्चा मानव के उस खतरनाक वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए जिसमें ऐसी वैश्विक आपदा संभव हो पाती है। एक मिनट के लिए मान लीजिए कि चीन वाकई कोई परीक्षण कर रहा था जिसके दौरान कोई चूक हो गई और वाइरस बाहर आ गया। यह भी कि चीन, फ्रांस - जो उस परीक्षण में चीन का भागीदार था - और विश्व स्वास्थ्य संगठन मानवता के विरुद्ध

**विशालकाय
फर्मास्यूटिकल
कंपनियों के बीच
परदों के पीछे चल
रही उस भयंकर होड़
के बारे में अभी चूँ
तक नहीं हो रही
जिसका मुनाफे के
लिए होने वाला तांडव
जल्दी ही हमारे
सामने आने वाला है।**

हुए इस अपराध पर पर्दा डाल रहे हैं। पर क्या चीन और फ्रांस अकेले हैं जैविक युद्ध की तैयारी करने वाले? कितनों के पास हैं ऐसे अस्त्र, और न जाने कहाँ-कहाँ इससे भी अधिक संहारक जैविक अस्त्र बनाने का काम हो रहा है। कभी भी कहीं भी अकस्मात् या पूर्व नियोजित वैश्विक संकट आ सकता है। ऐटम बम के आविष्कार की सफलता का परीक्षण करने की खातिर पूरे के पूरे दो नगर नेस्तनाबूद कर देने वाला मानव उसके बाद के 75 सालों में अभूतपूर्व प्रगति कर चुका है, विनाश के अपने हुनर में!

एक समय था जब विज्ञान और विकास पर मानव का नियंत्रण था। तब विज्ञान और विकास मानव के लिए थे। आज मानव विज्ञान और विकास के नियंत्रण में है। वह है ही विज्ञान और विकास के

असल समस्या यह ‘आज’ है। कोविड-19 के बाल एक लक्षण है समस्या का। इस लक्षण को मिटा भी दिया और हमारे आने वाले कल इसी आज का और विकास संस्करण बने रहे तो निश्चित ही ऐसे ही अन्य लक्षण प्रकट होते रहेंगे।

ऐसा नहीं है कि इस आज को बदलने की जरूरत और इसके विकल्पों की हमें खबर नहीं है। खुद गांधी ही स्वदेशी जैसा अमोघ मंत्र छोड़ गए हैं। पर हम स्वदेशी के मर्म को जानने की कोशिश किए बगैर उसे एक संकीर्ण कूप-मंडूक दृष्टि की उपज माने बैठे हैं। स्वदेशी केवल हमारी आवश्यकताओं को - बाजार को - यथासंभव स्थानीय बनाए रखने पर जोर देता है। उसकी दृष्टि सार्वभौमिक है। वास्तव में उसकी सार्वभौमिकता सिर्फ मानव-केंद्रित नहीं है जीव, जंतु, वनस्पति और प्रकृति के बाकी तत्व भी समाहित हैं उसमें। स्वदेशी के



बरक्स आज का वैश्वीकरण केवल हमारी आवश्यकताओं को- बाजार को- वैशिक बनाता है। दृष्टि उसकी आदमखोर मुनाफे की है।

निश्चित ही तालाबंदी किसी न किसी रूप में अभी रहेगी। देश और प्रांतों के घोषणा-वीर शासक आश्वासन दिला रहे हैं कि किसी को अनदेखा नहीं किया जाएगा। गरीब से गरीब के भी खाने-पीने-रहने का बंदोबस्त किया जा रहा है। उनके स्वास्थ्य की समुचित व्यवस्था कर दी गई है। इन दावों से जमीनी हकीकत का मेल बैठता नहीं। हिंदुस्तान जैसे विशाल और अपेक्षाकृत सीमित साधनों वाले देश में घोषणाओं और नीतियों के अमलीकरण में दोष तो रहेगा ही। चिंता की बात यह है कि जितना किया जा सकता है उतना भी करने की कोशिश नहीं हो रही। हमारे बड़े-बड़े अर्थशास्त्री - विशेषज्ञ - बता रहे हैं कि देश के पास पर्याप्त पैसा है, खाद्यान्न तो सरकारी गोदामों में भरा पड़ा है, हर जरूरतमंद की समुचित मदद की जा सकती है। लेकिन कोई मुस्तैदी नहीं दिखाई दे रही शासकों-प्रशासकों में।

चिंता होती है ऐसे संकट में ऐसी मानसिकता के होने पर, और इसके संभावित परिणामों को सोच कर।

वाई-144, रिजेंसी पार्क II, डीएलएफ फेज -IV, गुडगांव-122002 (हरियाणा)

मो. 8860153163





कोरोना समय में नागरिक समाज ने मानवता के नाते बड़ी भूमिका निभाई मीडिया ने आग लगाने का काम ज्यादा किया

आदित्य निगम

वरिष्ठ समाज वैज्ञानिक।
सीएसडीएस नई दिल्ली में
प्रोफेसर। अध्यतन पुस्तक
'डिजायर नेस्ट डेवलपमेंट'।

(1) 1918 के फ्लू से 4 करोड़ लोग और 1968 के तथाकथित हांगकांग फ्लू से 10 लाख लोग मारे गए, जबकि कोरोना से इनकी तुलना में काफी कम मौतें होने की संभावना है। क्या इसका यह अर्थ लगाया जाए कि सरकार और समाज के लोगों में दायित्वबोध बढ़ा है या बेहतर रिस्पांड की दूसरी वजहें हैं?

इस सवाल का जवाब दो स्तरों पर खोजा या दिया जाना चाहिए। पहली बात तो यह है कि जिन दो महामारियों के उदाहरण दिए गए हैं वे तो अब इतिहास का हिस्सा हैं और उनका अंत हम देख चुके हैं। इस नए कोरोना का तो अभी हमने एक छोटा-सा हिस्सा ही देखा है। फिलहाल कुछ नियंत्रणों के चलते हमने एक हद तक उस पर रोक लगा रखी है, मगर तीन चार देशों को छोड़ कर हम नहीं जानते कि स्थिति क्या है या होने जा रही है। इस बीमारी की मृत्यु दर कम है, यह सही है। मगर यह अपने आप में कुल मृत्युओं के बारे में हमें कुछ नहीं बताता है। उसका कुल फैलाव कितना है, उसकी अन्य बीमारियों के साथ अंतर्क्रिया कैसी है जिससे पहले से चली

माना जा रहा है कि पहाड़ों में ग्लेशियरों के पिघलने से हजारों साल से सोए पड़े वायरस भी यकायक जिंदा हो रहे हैं। उनका मानव समाज पर क्या असर होगा इसका तो हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं।

आ रही किसी बीमारी के लक्षण और घातक शक्ति ले सकते हैं - ये सभी अभी जानना बाकी है। एक दूसरे स्तर पर यह भी सही है कि आज विज्ञान की दृष्टि से हम काफी तरक्की कर चुके हैं, खासकर इस नजरिए से कि इन बीमारियों के बारे में आज हम और बेहतर और बारीक जानकारियाँ रखते हैं। जहाँ तक सरकारों और समाज का सवाल है, आम तौर पर समाज की इस संदर्भ में भूमिका हर जगह बहुत शानदार रही है मगर सरकारों के बारे में ऐसा नहीं कहा सकता है- चंद सरकारों को छोड़ कर। भारत और अमरीका समेत कुछ देशों में तो सरकारों की भूमिका शर्मनाक ही कही जा सकती है।

(2) जलवायु परिवर्तन का मसला अब मेरे या आपके 'विचारों' का मामला नहीं रह गया है। यह बेहद अफसोसनाक बात है कि चंद राजनेता आज भी इस दुनिया में हैं जो इसे मजाक समझते हैं - जिन्हें यह लगता है कि धरती की हरारत नहीं बढ़ी है, बल्कि 'हमें' गर्मी ज्यादा लगने लगी है। इससे ज्यादा अहमकाना बात और क्या हो सकती है कि यह किसी एक व्यक्ति की उम्र बढ़ जाने से गर्मी या सर्दी लगने की बात है? ऐसे राजनेता आज कम अज कम दुनिया के पांच-छह बड़े देशों पर राज कर रहे हैं। कोविड-19 के खास संदर्भ की बात करें तो जरूर इसका ताल्लुक प्रकृति से छेड़छाड़ से नहीं, उसके विनाश से है। एक हृद तक छेड़छाड़ तो हमेशा ही रही है। इसकी तफसील में यहाँ जाना संभव नहीं

है। मगर इतना तय है कि दुनिया में लाखों-करोड़ों किस्म के वायरस हैं जिनमें से बहुतों का हमें मालूम भी नहीं है। ये वायरस तमाम तरह के वन्य जंतुओं के जिस्म में बसते हैं। उन जानवरों के जिस्म से उनका पुराना रिश्ता रहा है और मुमकिन है कि उसकी वजह से एक इम्युनिटी-सी उनमें बन जाने के कारण ये उन्हें बीमार नहीं करते। मगर जैसे-जैसे हमारे तथाकथित विकास के चलते जंगलात कटते चले जाते हैं, खासतौर पर रेनफॉरेस्ट आदि का दायरा सिमटता चला जाता है, वैसे-वैसे उसमें रहने

वाले जंगली जानवरों के लिए भी संकट पैदा हो जाता है। उनके आवास गायब होने का असर सिफ उन पर नहीं, बल्कि उनके जिस्म में बसने वाले वायरसों पर भी होता है। वे नए हालात में एक जाति (स्पीशीज)



से एक दूसरी स्पीशीज का रुख करते हैं। इसे ‘जूनोटिक लीप’, यानी छलांग कहा जाता है। जब यह नई जाति इंसान होती है तो उसके असर फौरन किसी न किसी बीमारी- महामारी की शक्ति में सामने आते हैं, क्योंकि इंसान एक जगह नहीं रहता है- दुनिया भर में घूमता है और हर जगह अपने इंफेक्शन - संक्रमण छोड़ आता है। अभी तो हमने शायद इसकी शुरुआत ही देखी है। माना जा रहा है कि पहाड़ों में ग्लेशियरों के पिघलने से हजारों साल से सोए पड़े वायरस भी यकायक जिंदा हो रहे हैं। उनका मानव समाज पर क्या असर होगा इसका तो हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं।

(3) गृहबंदी के दोनों ही किस्म के नतीजे देखने

को मिल रहे हैं। जहाँ रिश्ते अच्छे थे मगर साथ वक्त गुजारने के मौके काम थे, वहाँ जरूर मध्यवर्गीय संदर्भ में प्रगाढ़ता बढ़ना स्वाभाविक है। मगर ऐसी भी परिस्थितियाँ कम नहीं हैं और जो इस बीच उभर कर आई हैं, जहाँ मर्दों का ज्यादातर वक्त घर से बाहर रहना औरतों और बच्चों दोनों के लिए अच्छा था। एक किस्म की दूरी संबंधों को बनाए रखने में मदद करती है – ऐसा खासकर उन निम्न-मध्यवर्गीय परिवारों के बारे में कहा जा सकता है जहाँ एक छोटे से घर में चार-पांच सदस्यों को अब हफ्तों एक साथ सुबह से शाम तक गुजारना पड़ता है। इससे जगह अधिक संकुचित होती है और तनाव की गुंजाइश बढ़ती है। इस पर अगर मर्द स्वभाव से धौंस जमा कर सबको काबू में रखने वाला है तो हालात काफी बिगड़ सकते हैं। लेकिन इन कुछ महीनों में जो कुछ हो रहा है उसके असर क्या इतने दूरगामी होंगे कि हम इसे एक नया युग कहने लगें ? मुझे ऐसा नहीं लगता कि इससे परिवार की धारणा ही बदल सकती है।



(4) मुझे शहर और गांव की प्रतिक्रियाओं में कोई खास अंतर नहीं दिखाई देता है। कुल मिलाकर जिसे इस दौर में बढ़ी अमानवीयताएँ कहा जा रहा है। वही ज्यादा देखने को मिलती है।

हमारे अंदर का मवाद जैसे बाहर आ रहा है। जाहिर है कि इसमें मीडिया और सरकार की भूमिकाएँ कर्त्तव्य नकारात्मक रही हैं। मीडिया ने आग लगाने का काम ही ज्यादा किया है अन्यथा फिरकापरस्ती का यह जहर इस तरह नहीं फैलता।

सत्ता की तरफ से एक बयान ऐसा नहीं आया, जहाँ इसे गलत कहा गया हो और इसे रोकने की अपील की गई हो। ये तो भला हो आम लोगों का, जिन्होंने इस दौर में सौहार्द और मानवीयता की ऐसी मिसालें कायम की हैं कि देख कर आंखें भर आती हैं। कितनी जगहों पर देखा हिंदू मृतक को, जिसके घरवालों तक ने उसके अंतिम संस्कार करने से इनकार कर दिया था, उन्हें मुसलमान पड़ोसियों ने कंधा दिया और ‘राम नाम सत्य है’ के नारे भी लगाए।



(5) कोरोना का अथ-व्यवस्था पर असर तो जगजाहिर है। अब कोई जान के अनजान बने रहना चाहे या फिर लोगों को बरगलाना चाहे तो उसका क्या किया जा सकता है? आर्थिक मंदी

हमारे यहाँ नोटबंदी के वक्त से ही ऐसी भयावह जगह पर पहुँच गई थी कि उस पर प्राथमिकता देकर हस्तक्षेप करना चाहिए था, मगर हस्तक्षेप करने के लिए पहले कुबूल करना पड़ता कि कुछ गड़बड़ है। लिहाजा अनजान बने रहकर बस हिंदू-मुस्लिम का राग छेड़े रहने में ही हुक्मरानों को अक्लमंदी दिखाई दी। अब कोरोना के बाद हालात बद से बदतर हुए हैं। लाखों लोगों, जो आम तौर पर प्रवासी मजदूर हैं, को अपना बोरिया बिस्तर बांध कर अपने घरों की तरफ कूच करना पड़ा। सैंकड़ों-हजारों किलोमीटर पैदल चलकर जाना पड़ा। कोई सोच नहीं, कोई योजना नहीं- बस ऐलान हो गया कि चार घंटे के अंदर घरबंदी लागू हो जाएगी। अर्थव्यवस्था इसके असर से शायद ही उबर पाए- मगर फिलहाल उसकी फिक्र

किसे है?

(6) सच तो यह है की मैं निराश हूँ। इस तथाकथित महान और सहिष्णु संस्कृति से मैं बिलकुल निराश हूँ। यह एक वहशियाना समाज है जिसे मैं सदियों से चली आ रही वर्णव्यवस्था और दलित उत्पीड़न जैसी भोड़ी और क्रूर प्रथाओं के साक्षात् रूप में देखता हूँ। जो कुछ अच्छा देखने को मिला वह नागरिक समाज के उन हल्कों से मिला जो सिर्फ और सिर्फ अपनी मानवता के ऐतबार से ऐसा कर रहे थे- किसी धर्म या संस्कृति के कहने पर नहीं।

(7) मनोवैज्ञानिक असर की बात तो मनोवैज्ञानिक ही बेहतर दे पाएंगे। मुझे बस इतना लगता है कि इस मुल्क के गरीबों के लिए इसके असर शायद बहुत गंभीर होंगे। इसका हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते हैं।

प्रोफेसर सीएसडीएस, 29 राजपुर रोड, दिल्ली-110054 मो. 9871406520





कोरोना ने एक ही समय दो तरह के हिंदुस्तान दिखाए यदि कोरोना सचमुच जलवायु परिवर्तन का नतीजा है तो ज्यादा ठोस सबूत चाहिए

प्रियदर्शन

सुपरिचित कहानीकार
और पत्रकार।
अद्यतन आलोचना
पुस्तक 'इतिहास
गढ़ता समय'।
एनडीटीवी इंडिया में
कार्यरत।

(1) महामारियाँ और आपदाएँ सभ्यता का हमेशा से पीछा करती रही हैं। आपने जिन दो महामारियों का जिक्र किया, उनके अलावा भी मानव जाति को बहुत सारे संकट झेलने पड़े हैं। सिर्फ प्राकृतिक आपदाओं की बात करें तो हमारे देश और दुनिया ने कई भूकंप झेले हैं। यही नहीं, बीती सदियों की जिन बीमारियों को हम अतीत की चीज मान चुके हैं, वे भी पलट-पलट कर आती रहीं और लोगों की जान लेती रही हैं। भारत में अब भी टीबी और मलेरिया से हर साल लाखों लोगों की जान चली जाती है। इस लिहाज से देखें तो कोरोना वायरस से बड़ा कोरोना वायरस का डर है। हालांकि यह बिलकुल वास्तविक है। जिस तेजी से कोरोना वायरस ने पांव पसारे वह डरावना है। लाखों लोग इस बीमारी की चपेट में आ चुके हैं। इसलिए जरूरी है कि हम कोरोना से सावधान रहें।

यह सच है कि कोरोना से होनेवाली मौतों की संख्या शायद बीती सदियों में आनेवाली महामारियों में हुई मौतों की संख्या से कम हो, क्योंकि आज की तारीख में चिकित्सा विज्ञान की प्रगति काफी आगे जा चुकी है, दुनिया कोरोना वायरस का टीका संभवतः जल्दी ही

खोज निकाले। यह टीका परिवहन की तेज रफ्तार और साधनों की बदौलत दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में बिजली की तेजी से पहुंचा दिया जाए। फिर भी कम से कम दो सबक हैं जो कोरोना वायरस से हमें लेने चाहिए। एक तो हमने मान लिया था कि अब हमने अंतिम तौर पर महामारियों पर जीत हासिल कर ली है, पिछले कुछ अवसरों पर आए नए-नए वायरसों के इलाज ने कुछ हद तक इसकी पुष्टि भी की, मगर प्रकृति बता रही है कि उसके अदृश्य हाथों के आगे मनुष्य अब भी बेबस है।

**सच यह है कि जब
यह जलवायु
परिवर्तन नहीं था,
जब प्रकृति में मनुष्य
का दखल नहीं के
बराबर था, तब
महामारियाँ कहीं
ज्यादा निरंतरता के
साथ हमारा पीछा
करती थीं।**

कोरोना वायरस के संदर्भ में एक और बात चिंताजनक है। अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि यह वायरस प्राकृतिक है या मनुष्य निर्मित। माना जा रहा है कि वृहान की एक प्रयोगशाला में वायरस पर चल रहे प्रयोगों के दौरान इसका जन्म हुआ। यह बहस बेमानी है कि यह साजिशन हुआ या अनजाने में। असली बात यह है कि प्रकृति के साथ मनुष्य के प्रयोग कई बार आत्मघाती भी साबित हो सकते हैं।

कोरोना वायरस के संदर्भ में एक और बात कही जानी जरूरी है। यह एक बड़ा मानवीय संकट है। ऐसे संकट में सारी दुनिया को एक होना चाहिए। लेकिन हम पा रहे हैं कि वह परस्पर आरोप-प्रत्यारोप से घिरी है। चीन और अमेरिका एक दूसरे के खिलाफ बयानबाजी कर रहे हैं। यूरोप नाराज है कि चीन ने जानबूझ कर यह वायरस फैलाया। भारत में तबलीगी जमात की लापरवाही की वजह से कोरोना वायरस का जो भी प्रसार हुआ हो, लेकिन उसके बहाने एक पूरी कौम को निशाना बनाया गया। मेरे सामने बार-बार यह सवाल

आता है कि कोरोना वायरस से हम लड़ लेंगे, लेकिन आपसी नफरत और संदेह के जो विषाणु हमारी कोशिकाओं में प्रवेश कर चुके हैं, उनसे कैसे निबटेंगे।

(2) यह बहुत आसान है कि हम कोरोना वायरस के लिए प्रकृति से छेड़छाड़ और जलवायु परिवर्तन को जिम्मेदार ठहरा दें। दरअसल इन दिनों प्रकृति में जो कुछ घटित होता है, उसे हम जलवायु परिवर्तन और मानवीय हस्तक्षेप के हवाले कर देते हैं। लेकिन सच यह है कि जब यह जलवायु परिवर्तन नहीं था, जब प्रकृति में मनुष्य का दखल नहीं के बराबर था, तब महामारियाँ कहीं ज्यादा निरंतरता के साथ हमारा पीछा करती थीं।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि कोरोना वायरस के पीछे असंदिग्ध तौर पर जलवायु परिवर्तन या प्रकृति से छेड़छाड़ का हाथ नहीं है। मैं बस यह कहना चाहता हूँ कि यह साबित करने के लिए हमारे

पास कहीं ज्यादा ठोस वैज्ञानिक सबूत होने चाहिए। अभी यह वैसी ही अटकलबाजी है, जैसी यह कि गर्भों में कोरोना वायरस नहीं फैलेगा। इस अनुमान या धारणा को



वैज्ञानिक साक्ष्य का बल चाहिए। एक बात जो ऊपर मैं कहना चाहता था, वह यह है कि सभ्यता और प्रकृति के बीच, मनुष्य और वायरस के बीच लुकाछिपी का खेल चलता रहेगा और शायद मनुष्य हर बार आगे का रास्ता निकालता रहेगा।

(3) गृहबंदी के दौरान दोनों प्रवृत्तियाँ देखने को मिली हैं। बहुत सारे लोग ऐसे हैं जो अब बरसों बाद इतनी फुरसत में परिवार के साथ दिन गुजार रहे हैं। बेशक यह एक मध्यवर्गीय मामला है, लेकिन इसने

बहुत बड़ी संख्या में घरों को उनकी पारिवारिकता लौटाई है। दूसरी तरफ, यह भी सच है कि बहुत सारे परिवारों के बीच तनाव की नई वजहें बनी हैं। खबरों को सनसनीखेज बनाने वाली हमारी दुनिया में यह बतानेवाले बहुत सारे लोग हैं कि लॉकडाउन के दौरान तलाक के मामले बढ़े हैं। यह भी सच है कि घरेलू उत्पीड़न के मामले भी सामने आए हैं। लेकिन इसे

सिर्फ गृहबंदी का परिणाम मानेंगे तो अपनी पारिवारिक और सामाजिक संरचना में बन रहे नए तनावों की अनदेखी का जोखिम हमें मोल लेना होगा। गृहबंदी ने बस यह किया है कि इस प्रवृत्ति को अचानक प्रगट होने का एक अवसर दे दिया है।

एक बात मैं अक्सर कहता हूँ कि भारत यूरोप और अमेरिका तो होना चाहता है लेकिन यह भूल जाता है कि उनकी समृद्धि के पीछे 200 साल की औपनिवेशिक लूट का हाथ भी है।

के काम में हाथ बंटाने लगे। जीवन में पहली बार वे बर्तन साफ कर रहे हैं, झाड़ू दे रहे हैं और पोछा लगा रहे हैं। इससे भी अच्छी बात यह कि ऐसा करते हुए वह शरमाए नहीं, बल्कि वे सबको बताते रहे हैं कि वे इन दिनों घर में पत्नी की मदद करते हैं। यह समाज में एक नए बदलाव की सूचना है। पुरुषों का यह सोचना कि पत्नी का हाथ बंटा कर वे कुछ कम मर्द नहीं सोचे जाएंगे, बल्कि आधुनिक विचार वाले माने जाएंगे- यह मर्दवाद के किले में एक बड़ी दरार है।

(4) कोरोना वायरस के असर को शहरों और गांवों में नहीं, अमीर और गरीब में बांट कर देखना चाहिए। जब हमारे देश में लॉकडाउन का एलान हुआ

तो यह एलान दो तरह से टूटा। शहरों का खाता-पीता मध्यवर्ग दुकानों पर टूट पड़ा। उसे अगले कुछ महीनों के राशन का सामान जुटाने की फिक्र थी। जहाँ सामाजिक दूरी बरती जानी थी, वहाँ धक्का-मुक्की का नजारा था।

लॉकडाउन तोड़ने का दूसरा काम उन गरीबों ने किया जो एलान के बाद दुकानों की ओर नहीं अपने घरों की ओर भागे। यह दोनों प्रक्रियाएँ दरअसल अपने यहाँ दो तरह के हिंदुस्तान बन जाने की सूचना हैं। एक खाता-पीता अघाया हिंदुस्तान है जो ताली बजाने और दिया जलाने के आत्मान पर खुशी-खुशी अमल कर सकता है, लेकिन शारीरिक दूरी के जखरी मशविरे को नजरअंदाज कर खरीददारी के लिए दुकानों पर भीड़ कर देता है। यह बहुत

आत्मकेंद्रित वर्ग है। दूसरी तरफ वे गरीब लोग हैं जिनके लिए जीना रोज के संघर्ष का नाम है। वे रोज कमाते और खाते हैं- इसी में कुछ पैसा बचा कर अपने घर भेजने की कोशिश करते हैं। जब उनको लगता है कि अब

न काम मिलेगा, न पैसे मिलेंगे और न ही खाना मिलेगा तो वे घर की ओर भागते हैं।

एक बात मैं अक्सर कहता हूँ कि भारत यूरोप और अमेरिका तो होना चाहता है लेकिन यह भूल जाता है कि उन देशों की समृद्धि के पीछे 200 साल की औपनिवेशिक लूट का हाथ भी है। भारत किसे लूटकर वह समृद्धि हासिल करेगा? वह अपने गरीबों को ही लूट रहा है- 90 करोड़ के एक भारत को अपना उपनिवेश बना कर 40 करोड़ का दूसरा



भारत विकास के राजमार्ग पर दौड़ रहा है। लॉकडाउन से बस इतना हुआ कि यह सचाई कुछ खुलकर सामने आ गई।

(5) अर्थव्यवस्था पर इस महामारी के असर भयावह होने जा रहे हैं। खासकर भारत के संदर्भ में याद रखने की बात यह है कि पिछले कुछ अरसे से-यानी कोरोना से पहले ही- हमारी अर्थव्यवस्था ढलान पर थी। रोजगार के अवसर घट रहे थे। उद्योग-धंधे संकट से जूझ रहे थे। ऑटोमोबाइल उद्योग लगभग पूरी तरह ठहरा हुआ था। मांग और आपूर्ति का संतुलन बुरी तरह बिगड़ा हुआ था। कोरोना ने आकर रही सही कसर पूरी कर दी। इस दौर में अर्थव्यवस्था की कमर टूट गई है। इसका नुकसान नोटबंदी से हजार गुना ज्यादा है। उद्योग-धंधे बंद पड़े हैं, लोगों की नौकरियाँ छूट रही हैं। उनके वेतन में कटौती हो रही है। किसी को कोई रास्ता दिखाई नहीं

**कोरोना वायरस ने
बताया है कि हम उदार
और लचीली संस्कृति
के वाहक अब नहीं बचे
हैं। वह भारत कहीं
तिरोहित हो चुका है-
या उसे पूरी तरह
मिटाने की कोशिश हो
रही है-**

पड़ रहा है। मगर इस त्रासदी का उच्चवर्गीय या मध्यवर्गीय समाज पर जो असर पड़ा है, उससे कई गुना अधिक मार गरीबों ने झेली है।

ध्यान से देखें तो कोरोना से लड़ने के जो भी उपाय बताए गए, वे मूलतः मध्यवर्गीय समाज को ध्यान में रखते हुए बताए गए। चाहे हर आधे घंटे पर हाथ धोने का काम हो, या 6 फुट की सामाजिक दूरी बरतने का या फिर घर से काम करने का। ये सारे विकल्प मध्यवर्ग के पास तो थे, गरीबों के पास नहीं थे। सच यह है कि इस लॉकडाउन ने एक बड़ी मेहनतकश आबादी को भिखमंगा बना डाला। उनके पास काम नहीं है, घर लौटने का विकल्प नहीं है।

उनके लिए भोजन का इंतजाम इतना नाकाफी है कि लोग कई जगह सुबह 6 बजे से लाइन में लग जाते हैं और तब भी पाते हैं कि उनका समय आने पर खाना खत्म हो गया। कोरोना वायरस की वजह से लॉकडाउन ने अगर गरीब को भुखमरी के लिए मजबूर किया है, तो बहुत बड़ी आबादी को गरीबी रेखा के नीचे धकेल भी दिया है। कहना मुश्किल है कि इस आर्थिक महामारी से हम कैसे उबरेंगे।

(6) आपके इस प्रश्न ने एक दुखती रग पर हाथ रख दिया है। कोरोना वायरस ने बताया है कि हम उदार और लचीली संस्कृति के वाहक अब नहीं बचे हैं। वह भारत कर्हीं तिरोहित हो चुका है या उसे पूरी तरह मिटाने की कोशिश हो रही है- जिसमें बहुत



सारी आस्थाओं, बहुत सारी विविधताओं और बहुत सारे अभ्यासों की जगह थी। एक बड़ी त्रासदी कई बार मनुष्य को बड़ा बनाती है। संकट में उसका 'सर्वोत्तम' निखर कर सामने

आता है। लेकिन हम पा रहे हैं कि कोरोना वायरस से कर्हीं ज्यादा खतरनाक घृणा का वायरस है जो हमारी रगों में, हमारी कोशिकाओं में दाखिल हो चुका है। जातिवादी उत्पीड़न की परंपरा पहले से ही संस्थागत रूप ले चुकी थी। अब सांप्रदायिक विद्वेष का सांस्थानीकरण हो चुका है। हम पहले से कम मनुष्य समाज हैं, हम कर्हीं ज्यादा बीमार समाज हैं। कोरोना से लड़ लेंगे, मगर इस वायरस से कैसे लड़ेंगे, मुझे नहीं मालूम। सच यह है कि कोरोना की त्रासदी से हम बच भी जाएँ और अगर बदलें नहीं



तो इस बचने का भी कोई मतलब नहीं रहेगा।

(7) सारी हताशाओं के बावजूद मैं मूलतः आशावादी हूँ। यह सच है कि अपने बहुत सारे संकटों के बावजूद सभ्यता ने प्रगति की है। हिंसा को मिलाने वाली वैधता घटी है, संकीर्णता सवालों से घिरी है और मानववाद को सम्मान मिला है। लेकिन यह सैद्धांतिक स्वीकृति जब तक व्यावहारिक जीवनशैली का हिस्सा नहीं बनती, तब तक हम संतुष्ट नहीं हो सकते। अभी तो खतरा इस सैद्धांतिक स्वीकृति पर ही है। फिर जो बढ़ा हुआ भय और असुरक्षा है, इनकी वजह से, समृद्धि के बावजूद, या शायद इसी के चलते यह समाज लगातार अपने-आप में सिकुड़ता और आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। हमने सामूहिकता में सोचना कम कर दिया है। हमारी पारिवारिकता भी सिमट रही है। बहुत सारे लोग इसे बीमार पूंजीवाद के लक्षण मानते हैं। एक हद तक यह बात सही है। लेकिन यह एक तरह का सरलीकरण भी है। संकट को ठीक से पहचानना होगा। हम पहचानेंगे और एक दिन इससे उबर आएंगे, इसी विश्वास में जीवन है और सभ्यता है।

ई-4, जनसत्ता सोसाइटी, सेक्टर नौ, वसुंधरा,
गाजियाबाद 201012, मो. 9811901398

सुरेश कांटक, अनिल प्रभा कुमार
लुङ्जी पीरांदेल्लो



अब खामोशी नहीं

गाँव के दक्षिण का यह मुख्य निकास था। सड़क गाँव के बाहरी निकास से अंदर की ओर चली जाती है। उसके प्रवेश द्वार पर ही स्थित है भरी-पूरी मुसहर टोली। दोनों तरफ इंदिरा आवास के कमरे और बीच में यह सड़क। इसके दोनों ओर खेलते रहते हैं नंग-धड़ंग बच्चे-बच्चियाँ, ओखल-मूसल से धान कूटती औरतें, ताश और जुए खेलते युवक और नाली में लोटती सूअर-सुअरियाँ। कभी किनारे पर लगे हैं डं पंप पर बर्तन माँजती, कपड़े फीचती औरतों का हुजूम भी दिख जाता है। इससे नाक-भौंह सिकोड़ते लोग भुनभुनाते हुए गुजरते हैं और उनकी गंदगी पर थूकते हैं।

मगर उस दिन ऐसा नहीं था। शाम का समय था। पूरी मुसहर टोली में सन्नाटा फैला था। सड़क पर ईंट-पथर के अनगिनत टुकड़े फैले थे उनके दाग से लग रहा था कि अभी-अभी कोई महासंग्राम छिड़ा था और संग्राम के बाद सन्नाटा फैला हुआ था।

सड़क की बाईं और दाईं ओर से कराहटों की आवाज सुनाई पड़ रही थी। बाजार से घर लौटते

सुरेश कांटक

वरिष्ठ कहानीकार।
'झोपड़ी और चाँद',
'मम्मी कहाँ गई पापा'
कहानी संग्रह।
'कोड़ार' उपन्यास।

शाम बाबू से नहीं रहा गया। वे पल भर थमे और बाईं वाली गली में घुस गए।

गली के अंदर दस लोगों की एक टोली बैठी हुई थी। टोली के सारे लोग आधे उधारे और अस्त-व्यस्त थे। उनका वार्तालाप जारी था। उनमें से तीन लोगों के सर पर पट्टियाँ बंधी थीं। सभी पट्टियाँ खून से रंगी थीं। वे चोट के दर्द से कराह रहे थे। उनकी पत्नियाँ उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगी थीं।

‘यह सब कैसे हुआ भाई?’ शाम बाबू ने उन्हें देखते ही पूछा।

‘पैसे के जोम में पागल हो गए हैं वे। बहुत मार मारा है आज।’ टोली का एक सदस्य बोला।

‘कौन थे?’ शाम बाबू उनके और नजदीक चले गए।

‘सड़क के पूरब वाले।’ उसने जवाब दिया।

‘क्यों, हुआ क्या आखिर?’

‘कहा नहीं, दारू बेच कर पैसा कमा रहे हैं, बड़का सेठ बन गए हैं। अब अपने आगे किसी को रहने नहीं देंगे। बात-बात पर लाठी-डंडा चलाने लगते हैं। दारू के साथ साले इज्जत भी बेच रहे हैं। समझते हैं कि कोई जानता ही नहीं। मेहरारू-बेटी से गाँव वालों को दारू पिलवा रहे हैं और बड़का बने हैं। हमलोग गरीब हैं तो क्या, वैसा करम नहीं करते हैं। जब चाहेंगे हम भी मजा चखा देंगे इनलोगों को, जरा ठीक तो हो जाने दीजिए।’ एक दुबला-पतला, काला-कलूटा नवही धारा प्रवाह बोल गया। उसके शरीर पर मात्र एक फटी हुई गंदी गंजी और भगई थी। झोटा बड़ा-बड़ा और उलझा हुआ था। देह पर एक परत मैल चढ़ी हुई थी।

उसके साथ के सभी लोगों की हालत लगभग यही थी। ओरतें भी मैली-कुचौली लूगा और कुरती पहने

हाँ जी, रोज बनाते हैं,
हजारों-हजार की
कमाई करते हैं! अपने
भी पीते हैं, गाँव
वालों को भी पिलाते
हैं। नशाबंदी है कहाँ!
सिर्फ कागज पर है!

हुई थीं, जिससे गंध के भभके उठ रहे थे।

शाम बाबू को सदमा-सा लगा अचानक। कल तक कितनी मिल्लत थी इनमें! साथ-साथ जाते थे जुलूस-प्रदर्शनियों में! अपने अधिकारों के लिए आवाज लगाते थे! शोषण और दमन के खिलाफ एकजुट होकर संघर्ष करते थे, आज क्या हो गया इनको! केवल दारू के कारण! उन्होंने एक युवक से पूछा, दारू तो बंद है अब, कौन लाता है दारू?’

‘लाता नहीं है, बनाते हैं लोग।’

‘बनाते हैं! इस पूर्ण नशाबंदी में भी?’

‘हाँ जी, रोज बनाते हैं, हजारों-हजार की कमाई करते हैं! अपने भी पीते हैं, गाँव वालों को भी पिलाते हैं। नशाबंदी है कहाँ! सिर्फ कागज पर है! इसीलिए चर्बी चढ़ गई है कपार पर! किसी को लगाते नहीं अपने आगे!’

‘लेकिन दारू तो बंद है न?’

शाम बाबू ने फिर कहा, ‘सरकार ने दारू पीने और बनाने दोनों पर रोक लगा रखी है।’

‘काहे को बंद है जी! पहले से भी जादा चल रहा है! कहता हूँ न कि केवल कागज पर बंद है!’ उसने पूरे जोश-खरोश के साथ अपनी बात दुहराई।

‘और पुलिस वाले धड़-पकड़ नहीं करते?’

‘काहे को पुलिस और काहे को धड़पकड़! शुरू-शुरू में दो तीन बार आए थे। चूल्हा-चाकी फोड़ा, ड्राम फेंका, पास उलट दिया जमीन पर, दारू गिरा दिया नाले में। डंडे भी मारे। सब लोग घर छोड़ कर भाग गए थे, वन-बधार में! जब तक वे चले नहीं गए, छुपे रहे अरहर और ईख के खेत में। जब चले गए तब बाल-बुतरू संग घर आए।’

‘और फिर बनाने लगे?’ शाम बाबू ने पूछा।

‘नहीं तो क्या! दाम बाँध दिया लोगों ने। दाम के



लिए ही किए थे सारा नौटंकी। हर महीने पहुंचा आते हैं थाने पर। चौगुनी हो गई उनकी कमाई। अब कोई नहीं आता है, पूछने भी कि कौन क्या कर रहा है! देखा-देखी बहुत लोग बना रहे हैं। बेच रहे हैं। मजे से पी भी रहे हैं। इसी नशे में आज बुरी तरह पिटा भी गए, नहीं तो उनकी मजाल नहीं थी कि मारकर फरह पा जाते!

‘तुमलोग भी बनाते हो?’ शाम बाबू पूछ पड़े।

‘हाँ जी, आप से झूठ क्या बोलना है! आप तो अपने हैं! सबकुछ जानते हैं। समय पर काम भी आते हैं। इसी दारू से हाथ में दो-चार पैसे आते हैं, वरना दूसरा कौन आमदनी है? कौन-सा रोजगार है? क्या खाएंगे? कहाँ से खाएंगे? कद-काठी देख ही रहे हैं! काम-धाम होता नहीं! शरीर में दम-दिलासा रहेगा तब न काम होगा!’

‘तब तो तुमलोग भी उतने ही दोषी हो, जितने वे लोग हैं!’

‘कैसे?’ इस बार दूसरा आदमी चिहा कर बोला।

‘वे लोग दारू बनाते हैं, तुमलोग भी बनाते हो। वे लोग दारू पीते हैं, तुमलोग भी पीते हो। वे लोग दिन-रात नशे में रहते हैं, तुमलोग भी रहते हो। खाने को है नहीं और दारू के नशे में पड़े रहोगे तो काम होगा कैसे? काम नहीं होगा तो पैसे आएंगे कहाँ से? तुम्हारे बाप-दादों को देखा है हमने, लंबे, हट्टे-कट्टे। किसी का हाथ पकड़ लेते थे तो क्या मजाल कि छुड़ा ले कोई! एक तुम लोग हो, किसी की देह में जान नहीं, मरियल लकलक, धकेल देने पर जमीन पकड़ लोगे! वे लोग जमकर काम करते थे और जमकर खाते थे, तब देह में हूब रहती थी। किसी भी अत्याचारी से लड़ जाते थे! चढ़ जाते थे करेजे पर! एक तुम लोग हो, देह में जान

नहीं जी, आप भी उन्हीं लोगों के पक्ष में बोल रहे हैं। हम सब समझते हैं, पैसे वालों के पक्ष में सभी होते हैं। गरीब का साथ कोई नहीं देता आजकल!

नहीं, नशे में झूमते रहते हो! खाने का ठिकाना नहीं मगर हाथ-हाथ में मोबाइल आ गया है। फूहड़ पातर गीत सुनते रहते हो! तुमलोग क्या लड़ोगे किसी से! दासु पीयो और ढहुआए रहो दिन-दिन भर।’ शाम बाबू से रहा नहीं गया तो बोल पड़े।

‘ऐसा मत कहिए। हमलोग जान ले लेंगे उनकी।’

‘किनकी जान ले लोगे?’

‘जो मारे हैं उनकी।’

‘वे तो तुम्हारे भाई-बंधु हैं। उन्हीं पर बाघ बनोगे?’

‘कैसा भाई-बंधु जी? मार कर खराब कर दिया, अब भाई-बंधु कैसा? वे हमारे दुश्मन हैं, दुश्मन!’

‘नहीं, तुम्हारा दुश्मन वे नहीं हैं, कोई और है जिसे तुमलोग देख-पहचान नहीं रहे हो! भाई को ही दुश्मन समझ रहे हो!’

‘नहीं जी, आप भी उन्हीं लोगों के पक्ष में बोल रहे हैं। हम सब समझते हैं, पैसे वालों के पक्ष में सभी होते हैं। गरीब का साथ कोई नहीं देता आजकल! मगर हम भी इन्हें छोड़ेंगे नहीं! दासु बेच कर धनी बन गए तो हमें दबाना चाहते हैं।’

‘नहीं, पैसे की बात नहीं है, भाईचारे की बात है। तुम समझते नहीं मेरी बात। वैसे तुमलोग भी तो दासु बनाते ही हो, क्यों नहीं धनी बन जाते?’

‘हमारे पास उतनी पूँजी नहीं है न, ‘पास’ डालने के लिए।’

“‘पास’ क्या है?”

‘दासु बनाने के लिए महुआ, गुड़, पानी, नौसादर, खाद। इनमें से कई चीजों को मिला कर सड़ाते हैं कई दिनों तक। उसी को ‘पास’ कहते हैं। फिर उसी को मुँह बंद तसले में खौलाते हैं, जो भाप बनकर निकलता है,



वही एक नंबर ‘जरती’ है, एक धूँट पीने पर भी बेहोश हो जाता है आदमी। फिर जब इसे दुबारा खौलाते हैं तो वह दो नंबर होता है। दो नंबर हल्का नशा करता है।’

‘उनलोगों के पास इतना पैसा आया कहाँ से?’

‘उनलोगों का सरोकार है बड़े लोगों से, वे ही मदद करते हैं। बदले में मनमानी पीते हैं। खेलते भी हैं उन्हीं के घर में। हमलोग ऐसा नहीं कर सकते।’

‘बड़े लोग कौन?’

‘जो पैसे वाले हैं, दबंग जाति के हैं। और कौन?’

‘मतलब पैसे के कारण ही यह दरार आ गया है तुमलोगों के बीच? यहीं न?’

‘नहीं जी, और भी कारण है, वे अपने को हमसे बड़े मानते हैं, कहते हैं हम थानी हैं, तुमलोग उपहिया हो।’

‘मतलब?’

‘मतलब कि वे लोग इस गाँव के मूल निवासी हैं और हमलोग बाहर से आकर यहाँ बस गए हैं। इसलिए अपने को हमसे बड़ा मानते हैं और हमें दबाते रहते हैं।’

‘क्या सचमुच तुमलोग बाहर से आए हो?’ शाम बाबू ने पूछा।

‘इस बारे में हमसे अधिक तो आप ही जानते होंगे। हमारे पुरुखों-पुरनिओं को भी देखे हैं, जानते हैं।’

‘मैं तो यही जानता हूँ कि तुम सारे लोग नतुरा हो। इस गाँव की लड़की से शादी करने के बाद ससुराल में ही बस गए हो। उनलोगों की भी यही दशा है, जो अपने को ‘थानी’ कहते हैं। जो मूल निवासी थे, वे तो तो कब के मर-बिला गए। अब जैसे वे हैं, वैसे तुम हो। पूरा गाँव ऐसे ही बसा है। मूल गाँव तो यह चेरो खरवारों का था जिन्हें मार कर, दारू पिला कर,

तुम सूरज हो। सबको प्रकाश देनेवाले। अपना महत्व समझो। सूरज अंधेरे में प्रकाश देता है। उजाला फैलाता है। और तुम खुद अंधेरे में फंसे हो। इन लोगों को भी फँसाए हो।

बहला-फुसला कर, जर्मींदारों ने बाहर खदेड़ दिया। यह झगड़ा तो झूठ-मूठ का है। तुम्हें आपस में लड़ाने के लिए किसने यह झगड़ा लगा दिया है?’

‘आप न कहते हैं ऐसा। उन्हें अपने ‘थानी’ होने का बहुत घमंड है। हमको कुछ समझते ही नहीं। लेकिन हमें भी खामोश नहीं रहना है। जैसे हमारा खून बहा है न, उनका भी बहाएंगे। तभी पूर पड़ेगा।’ एक नंग-धड़ंग लड़का बोल पड़ा।

‘पहले तुम अपना नाम बताओ, क्या नाम है तुम्हारा?’

‘मेरा नाम सुरुजा है।’

‘नाम तो बहुत अच्छा है तुम्हारा! सूरज!’

‘सूरज नहीं सुरुजा। सब यही कहते हैं।’

‘गलत कहते हैं, तुम्हारा नाम बिगाड़ने के लिए। तुम्हें ओछा दिखाने के लिए। तुम सूरज हो। सबको प्रकाश देनेवाले। अपना महत्व समझो। सूरज अंधेरे में प्रकाश देता है। उजाला फैलाता है। और तुम खुद अंधेरे में फंसे हो। इन लोगों को भी फँसाए हो। तूने एक बात बहुत अच्छी कही- खामोश नहीं रहना है! ठीक बात है। अपनी बात कहनी है। मगर किससे? और कौन-सी बात? इस पर भी सोचो। तुम्हारे पास भी रोजी-रोजगार होता तो तुम्हारी यह हालत नहीं होती। पढ़ते-लिखते। अच्छा कमाते। अच्छा खाते। अच्छी तरह रहते। सड़क के उस पार वाले भी गलत काम नहीं करते। वे भी तुम्हारी तरह ही हैं। सही बात नहीं सोच पाते। झूठ-मूठ की बात पर आपस में लड़ते हैं। यही बात तुम्हें सोचनी है, कहनी है, खामोश नहीं रहना है। मगर किससे? यह भी सोच लो, अच्छी तरह। कल मेरे साथ अस्पताल चलो, सबका इलाज होगा। रोने-धोने और बदला लेने की बात मन से निकाल दो। मैं उन लोगों से भी मिलता हूँ। समझाता हूँ उन्हें भी।’

शाम बाबू चुप हो गए। सोचने लगे कुछ देर तक। क्या होगा अब? आपस में ही लड़ने लगे हैं ये लोग,

दुश्मनों से कैसे लड़ेंगे? थानी और उपहिया की लड़ाई कहाँ से आ गई? दोनों एक हैं। जाति एक है, आर्थिक स्थिति एक है, समाज के सबसे निचले स्तर पर हैं, उपेक्षित हैं, दलित हैं, उत्पीड़ित हैं। फिर भी आपस में लड़ रहे हैं। मूल समस्या और मूल शत्रु को पहचान ही नहीं रहे हैं, कैसे होगा इनका उद्धार?

तभी दूसरे पक्ष की बहरनी देवी की सूरत नजर में कौंध गई। उसका पूरा परिवार इन लोगों से अच्छा है। पति बहरा है मगर दो-दो जवान बेटे तैयार हैं। सब के सब बनिहारी मजूरी में थे। पहला बाबू साहेब की बनिहारी में लगा था। दूसरा उनके दरवाजे पर स्थायी नौकर था। बहरा बाप भी उन्हीं की तीमारदारी में लगा रहता था। माई नई नवेली थी। साँवली, सुडौल चेहरे वाली थी। नैहर से ही बड़े लोगों की मुँहलगू थी, सो यहाँ भी बाबू साहेब के घर के अंदर चली गई थी। घर के कामकाज निबटा देती थी। खाना-दाना मिल जाता था। बाबू साहेब की राय से ही दो बार पंचायत का चुनाव मुखिया पद के उम्मीदवार के लिए लड़ चुकी थी। उसकी हर जखरत पर बाबू साहेब काम आते थे। रुपये-पैसे से लेकर अन्य जखरतों पर वे बहरनी के साथ खड़े रहते थे। यही कारण था कि उसकी आर्थिक स्थिति पहले पक्ष से अच्छी थी। मुसहर टोली में उसकी धाक थी। वे किसी से डरते भी नहीं थे।

किंतु जब से नशाबंदी का एलान हुआ था, बहरनी



का पूरा परिवार दारु बनाने के धंधे में लग गया था। गुड़, महुआ, टंकिसकेशन की सुई वगैरह खरीदने के लिए पूँजी की कमी नहीं थी। जितना दारु बनाता था, सब बिक जाता था। गाँव के अच्छे-अच्छे लोग उसके घर आते थे और पीते थे। हर शाम बाजार जैसा माहौल बन जाता था। कहने को तो पूर्ण नशाबंदी थी पूरे सूबे में, लेकिन पहले से भी अधिक लोग अब पीने लगे थे। गरीब भी अमीर भी, खेतिहर भी मजदूर भी, जवान भी बूढ़े भी, यहाँ तक कि किशोर और बच्चे भी उसका स्वाद लेने लगे थे। सरकारी फरमान था, पकड़े जाने पर कठोर सजा होगी। पीने वाले और बनाने वाले दोनों पर जुर्माना लगेगा। मगर कौन किसको पकड़वाएगा? गाँव से दुश्मनी कौन ले गा? शुरू-शुरू में थानेवालों ने सख्ती की, मगर पैसे के आगे वे भी झुक गए। उनकी आमदनी चौगुनी हो गई। देखा-देखी और लोग भी इस धंधे में लग गए। दूसरे सूबों से कितना आता भला! माँग पाँच गुना बढ़ी तो पूर्ति भी उतनी होने लगी। अब कोई किसी से कम नहीं था। किसी की बात बर्दास्त करने वाला कोई नहीं था। उसी अहंकार और अभिमान का फल था कि मुसहर टोली में आए दिन ईंट-पत्थर और लाठी-डंडे चलने लगे थे। बनाने वाले भी जमकर पीने लगे थे। पैसे भरपूर आने लगे थे। फिर क्या था, बुद्धिमान लोग अपनी आमदनी बढ़ाने की युक्ति में लग गए। दोनों दलों के मददगार लोग खड़े हो गए। मामला थाने तक पहुँच गया। थानेदार की आमदनी का एक और रास्ता तैयार हो गया। लक्ष्मी हरहराने लगी। मुकदमे लिखने के लिए

पहले मजूरी करते थे, लकड़ी
काटते थे, तेनी झाड़ते थे, मूस
मारते थे, दोहना, सितुहा,
घोंधे, मछरी पकड़ते थे। अब
हम भी दारु चुआएंगे। ऊ
क्या समझते हैं अपने
आपको। हमें भी आता है वह
सब, जो वे करते हैं।

भी मुँह माँगी रकम मिलने लगी ।

जो पीने-पिलाने से बचे थे, वे सुनता साखी थे । गाँव में न उनका कोई अस्तित्व था, न अधिक संख्या थी ।

शाम बाबू चुपचाप इन्हीं बातों पर विचार कर रहे थे तब तक एक घायल नवहीं बोला, ‘क्या सोच रहे हैं तब से?’

‘क्या सोचूँ, सब गड़बड़ लग रहा है । पैसा सबके चरित्र को बदल रहा है ।’

‘मतलब?’

‘मतलब, पैसा भाई को भाई का दुश्मन बना रहा है । असली दुश्मन आँखों से ओझल हो रहा है । कुछ लोग तुम्हारी तरफ हो गए, कुछ लोग उनकी तरफ हो गए । दोनों को लड़ाते हैं वे । तुम दोनों आपस में लड़ने लगे । बच्चों को पढ़ाने-लिखाने की बात कोई नहीं सोचता । अपना जीवन सुधारने की बात कोई नहीं सोचता । कैसे सुधरेगा यह समाज? यहीं चिंता की बात है!’

चिंता की कोई बात नहीं, हम इन्हें देख लेंगे । वे दस हैं तो हम भी बीस हैं । दारु पिलाकर लोगों को अपने पक्ष में कर रहे हैं । हम भी वैसा ही करेंगे । इसीलिए हम भी दारु चुआ रहे हैं । पहले मजूरी करते थे, लकड़ी काटते थे, तेनी झाड़ते थे, मूस मारते थे, दोहना, सितुहा, धोघे, मछरी पकड़ते थे । अब हम भी दारु चुआएंगे । ऊ क्या समझते हैं अपने आपको । हमें भी आता है वह सब, जो वे करते हैं ।’

‘अभी तक मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आई । यह काम गैरकानूनी है ।’

‘होने दीजिए । कौन नहीं कर रहा है गैरकानूनी काम? किसका क्या हो जाता है? जो सबका होगा हमारा भी होगा!’



‘देखा-देखी पाप और देखा-देखी पुण्य! ऐसा नहीं करना चाहिए। मैं बात करता हूँ बहरनी के परिवार से।’

‘कोई फायदा नहीं होगा, वे लोग अपने मालिक की बात ही मानेंगे। आपकी बात सुनेंगे भी नहीं। अब वह समय बीत गया, जब सब आपकी बातों की कद्र करते थे।’

‘कैसे?’

‘वे लोग मालिक की पाटी में चले गए हैं। अपनी पाटी छोड़ दिए हैं। जिसका खाएंगे, उसका गाएंगे। वे लोग उनकी मदद करते भी हैं। आप क्या करते हैं हमलोगों के लिए?’

शाम बाबू को लगा जैसे उनके पैरों तले की जमीन ही घिसक गई हो। वे जहाँ बैठे थे उसके चारों और देखने लगे। बगल वाली कोठरी के पास एक मुसहरनी धोघे को फोड़ फोड़ कर उसके अन्दर से उसकी गुद्धियाँ निकाल रही थी। दूसरी, मूसल और ओखल से धान कूट रही थी। तीसरी सिलवट-लोडे से मसाला पीस रही थी। कुछ दूरी पर एक सुअरी अपने छोनों के साथ बहते नाले में लोट-पोट करती किकिया रही थी। अंधेरा भी बढ़ने लगा था। पास वाले पोल पर बिजली का बल्ब अभी-अभी जला था। खेलने वाले बच्चे नंग-धड़ंग धमाचौकड़ी मचा रहे थे।

उनके मन में आया, अभी ही बहरनी की खोज खबर ले लूँ। उसे अपनी बात समझा दूँ। तभी उन्होंने देखा, तीन चार लोग उसके आँगन में घुसे। सबके सब अभी तीस-पैंतीस की उम्र के थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ये लोग नशे की जुगाड़ में हैं। अभी उनका वहाँ जाना उचित नहीं होगा। कल किसी वक्त उससे मिलना ठीक होगा।

शाम बाबू वहाँ से उठे और अपने घर की ओर चल पड़े। वे कुछ कदम ही अभी आगे बढ़े होंगे कि देखा, चार लोगों का एक और दल बहरनी के घर की ओर जा रहा था।

कांट, ब्रह्मपुर, बक्सर, 802112 बिहार मो.9931837620



अनिल प्रभा कुमार

अमेरिका में बसी हिंदी कथाकार। कहानी संग्रह ‘बहता पानी’, ‘कतार से कटा घर’। कविता संग्रह ‘उजाले की कसम’ उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा ‘विदेश हिंदी प्रसार पुरस्कार’।

दुनिया मेरे आगे

दुनिया के एक मशहूर शहर का चर्चित हिस्सा। पटरियों पर अंधाधुंध भागते लोग और सड़कों पर भागता ट्रैफिक। कोई किसी को नहीं जानता-पहचानता। अच्छा ही है। इस अजनबीपन की ओट में छिप जाने में भी एक राहत है। कभी-कभी पहचान का गुम हो जाना भी तनाव खत्म कर देता है। गति में सहज बह जाने में भी एक सुकून है।

शहर की गति में जोर का झटका तब लगता है जब सड़क की ट्रैफिक लाइट अपनी लाल-लाल आँखें उघाड़ लेती है। चलते वाहन थम जाते हैं और चलते पैर बेसब्र होकर दूसरी ओर मुड़ जाते हैं जहाँ अब हरी बत्ती उन्हें शह दे रही है। रास्ता बदलने का, पैरों के न रुकने का और विकल्प चंद मिनट बचा लेने का। वह है कि अभी भी एक ही जगह पर खड़ी है। बेचैनी से हर आने वाली टैक्सी को देखकर बाँह आगे बढ़ाकर जोर-जोर से ऊपर नीचे करती है, रुक जाने का इशारा करती हुई। सब उसे नजरअंदाज करते हुए पास से गुजर जाते हैं।

उसे अपनी भूल का एहसास हुआ। वह सड़क के कोने पर आकर खड़ी हो गई। पटरी से दो कदम नीचे उतर कर ताकि टैक्सी वाला उसे देख तो सके पर कुचल न पाए। बड़ी सतर्कता के साथ वह टैक्सियों की छतों पर लगे चुंबकीय विज्ञापनों से नजरें बचाकर सिर्फ उन पर लगे संकेतों को गौर से देखने लगी। छत पर लगी लाइट बंद है, मतलब उसमें पहले से ही कोई सवारी बैठी है। क्यों नहीं पहले ध्यान से देखा? उसे अपने पर खीझ हुई। कुछ पर ‘ऑफ ड्यूटी’ शब्द चमक रहे थे। वह भाग-भाग कर सबको रुकने का संकेत दे रही थी। कोई नहीं रुका। अब पूरी तरह से सचेत होकर उसने दूर से आती हर

टैक्सी की कोड भाषा समझने की कोशिश की। एक टैक्सी आ रही थी जिसकी छत पर नंबर रोशनी में चमक रहे थे। किसी ब्रॉडवे-शो का विज्ञापन भी था शायद। फुर्ती से आगे बढ़कर बाँह से उसे रोकने का इशारा किया। टैक्सी रुक गई। उसने सीधे ड्राइवर को देखा। ड्राइवर ने हाँ में सिर हिला दिया। बात हो गई।

झपट कर दरवाजा खोला और पिछली सीट पर धंस गई। ‘लांग



आईलैंड सिटी’, गंतव्य बताकर उसने एक गहरी सांस ली। जरा भी सुस्ती दिखाती तो उससे पहले कोई और अंदर आकर जगह धेर लेता। यह न्यूयॉर्क है।

बताना मुश्किल है कि वह इस शहर में नई-नई है। इस बात के लिए वह सजग और सचेत भी रहती है कि कोई बता न पाए। आगे झुककर उसने ड्राइवर का नाम पढ़ने की कोशिश की। सामने लगे उसके आई.डी कॉर्ड और उसकी शक्ति का मिलान किया। ध्यान से देखा। साँवला, दुबला-सा सादत चौधरी। बांग्लादेश का होगा शायद। अधिकतर प्रवासी ही यहाँ आकर टैक्सी ड्राइवर हैं। अपने देश में पता नहीं सच को कैसे लपेट कर कहते होंगे। यूँ भी जब पेड़ों से झड़ते डॉलरों के सपनों से आँखे चुँधिया रही हों तो सच कौन जानना चाहता है?

मनदीप का उड़ता हुआ मन ठिठक गया। जाकर अटक गया उस बुलेट-प्रूफ प्लास्टिक की शील्ड पर जो ड्राइवर और उसके बीच विभाजन की तरह खड़ी थी। उसने धीरे से हाथ बढ़ाकर उस दीवार को छुआ। उंगलियां काँप गईं। मन बहक गया। भटक कर किसी और जगह जाकर खो गया। वीरानगी थी जहाँ। बर्फली शांति। न कोई अपना, न कोई पनाह, न कोई रक्षा कवच। वह यूँ ही उस बीच की दीवार को देखती रही। एक गहरी साँस भी यूँ ही निकल गई। अच्छा है न कि सादत चौधरी अब सुरक्षित है। ऐसा कुछ नहीं था जो इस शील्ड को भेदकर उसको जख्मी कर सकता। न बंदूक की गोली और न ही कोई चाकू।

कैनेडा के जिस बर्फीले टंडे शहर से वह आई है वहाँ के ज्यादातर टैक्सी ड्राइवर पंजाबी सिख हैं। पंजाब से आए किसान। परिश्रमी, दिलेर और चुनौतियों को भी चुनौती देने वाले। केश कटवा दिए पर दाढ़ी-मूँछ संभाल ली। अपनी पहचान की तरह बचाकर। वह भी तो

है— बीबी मनदीप कौर देओल। हालांकि कोई नहीं बुलाता उसे इस तरह से। फिर भी इस संबोधन के ख्याल से ही उसके चेहरे पर मुस्कान आ गई।

पाँच फुट सात इंच लंबी, चार इंच एड़ी वाली सैंडिल पहने जब वह अपने छरहरे कटाव वाले शरीर पर स्कर्ट-सूट पहनकर सीधी खड़ी होती है तो लोग उसके गोलाई लिए गोरे चेहरे पर आँखें टिका लेते हैं। वह औरत है। कोई कितना भी छिप कर निहारे उसके भीतर का रेडार सब पकड़ लेता है। फिर भी वह ऐसी अनजान बनी रहती है कि जैसे देखा ही नहीं।

अब वह पत्रकार है स्थानीय टेलीविजन की। जो सपना देखती है एक दिन राष्ट्रीय टेलीविजन की प्रमुख एंकर वुमैन बनने का। ये महिलाएँ जानी जाती हैं— अपनी बुद्धिमता, शालीनता, आकर्षक और संग्रांत व्यक्तित्व के लिए। मनदीप तेजी से सब सीख रही है।

एक हिंदुस्तानी लड़की का नाम अमरीकी स्क्रीन पर आना अपने आप में खबर है। उसे सोच कर अच्छा लगा। आसान नहीं था यहाँ तक भी आना।

हर कदम में आगे है वह। सलीके से कटे, चेहरे को अपने फ्रेम में सजाए, काले चिकने बाल और बड़ी-बड़ी आँखों के ऊपर हल्का- हल्का मेक अप। जानती है कि बह किसी भी अमरीकी एंकर वुमैन से कम आकर्षक नहीं दिखती। यह भी मालूम है कि अभी उसे लंबा रास्ता तय करना है। कैनेडा के विनिपेग से अमरीका के न्यूयॉर्क तक का।

टैक्सी रुक गई। मनदीप ने मीटर पढ़ा। सवारी के बैठने की सीट के सामने ही एक छोटी सी कटोरीनुमा जगह पर नकद पैसे डाले। बिना पीछे देखे टैक्सी से उतर गई। उसकी छठी इंद्रिय ने चुगली खाई कि ड्राइवर रुककर उसे देख रहा

है। तिरछी आँखों से पलटवार किया। सकपका कर टैक्सी वाले ने गाड़ी स्टार्ट कर दी।

मनदीप दनदनाती हुई आगे बढ़ गई। यहीं न्यूयॉर्क टैक्सी वालों की यूनियन का दफ्तर था। दफ्तर के बाहर ही अन्य चैनलों के फोटोग्राफरों के साथ उसने डैरिक को भी खड़ा पाया। उसके अपने छोटे से स्थानीय टेलीविजन का कैमरामैन।

‘हाय मैन्डी’ कहकर डैरिक आगे बढ़ आया।

एक तरफ बहुत सी टैक्सियाँ खड़ी थीं और दूसरी तरफ खुले मैदान में टैक्सी ड्राइवर।

वह धड़ल्ले से आगे बढ़ती गई। सभी दूसरे देशों से आए, टूटी-फूटी अंग्रेजी बोलने वाले अप्रवासी। ज्यादातर पुरुष। बहुत कम औरतें। भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश और अफगानिस्तान से आए लोगों का उसे अनुमान हो जाता है। कुछ पोलेंड, सोवियत संघ और कोरिया से भी थे और बहुत कम अफ्रीकी देशों से। उसने गंभीरता के मुखौटे को थोड़ा और ठीक किया। सीधे देखती हुई आगे बढ़ती गई। भीड़ अपने आप रास्ता दे रही थी।

डैरिक ने सुझाव दिया कि कुछ बाइट्स तो ले ली जाएँ। एक तरफ ओट में होकर उसने पर्स से छोटा सा शीशा निकाला। बालों को उंगलियों से ठीक किया। लिप-ग्लौस निकालकर होठों पर फेर ली।

‘ओ के’। वह सवालों के साथ तैयार थी।

‘आप लोगों के यहाँ एकत्रित होने की कोई खास वजह?’

‘हम लोग जी-तोड़ मेहनत करते हैं पर सारा फायदा कंपनी के मालिक ले जाते हैं।’

‘हमें और सुविधाएँ चाहिए।’

‘टैक्सी के ऊपर लगे विज्ञापनों से जो राशि प्राप्त होती है उसका अंश हमें भी मिलना चाहिए, खासकर जिनकी अपनी टैक्सियाँ हैं।’ वह सुन रही थी। वह पूछ रही थी। डैरिक हर कोण से रिकॉर्ड करता गया। एक प्रशंसा का भाव उसके मन में उमड़ता है। कितनी साफ अंग्रेजी बोलती है मैंडी।

कहीं एक हलचल-सी हुई। माइक पर एक महिला का स्वर उभरा—‘मेरे साथियो...।’

सब कुछ थम गया।

मनदीप चौंकी। इन आदमियों की भीड़ में एक स्त्री वक्ता!

‘सामाजिक कार्यकर्ता—भैरवी देसाई।’ डैरिक धीमे से फुसफुसा रहा था।

‘कुछ साल पहले इन्होंने टैक्सी ड्राइवरों की बड़ी सफल हड़ताल करवाई थी। सभी इनकी बहुत इज्जत करते हैं, क्योंकि यह इनके हक में निधंडक सड़कों पर उत्तर आती हैं। टैक्सियों में यह सुरक्षा शील्ड इन्होंने ही लगवाई है।’

मनदीप को कहीं बहुत अच्छा लगा। चेहरे पर कोई भाव नहीं आने



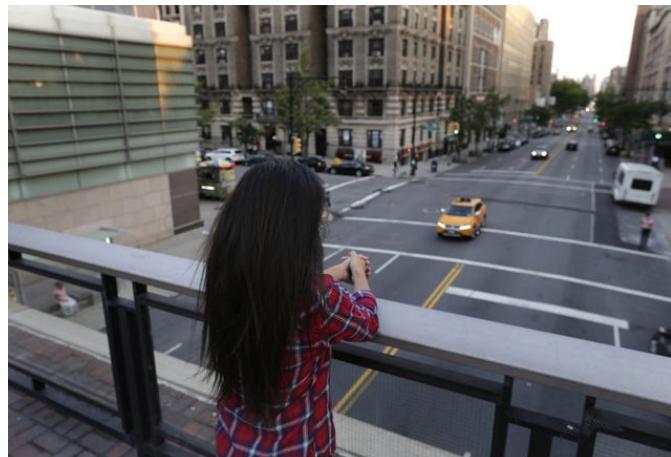
दिया । धीरे से बोली- ‘जाओ, उसके भाषण के कुछ हिस्से रिकॉर्ड कर लो । कुछ भीड़ के शॉट्स भी ।’

टैक्सी ड्राइवर, उनके इतने बड़े संगठन, उनके सरोकारों के बारे में तीन मिनट की स्टोरी स्थानीय टी वी पर प्रसारित हो गई । उसकी तस्वीर के साथ मनदीप देओल का कैषण भी छा गया । मैंडी नहीं मनदीप ।

अभी तो शुरुआत है । एक हिंदुस्तानी लड़की का नाम अमरीकी स्क्रीन पर आना अपने आप में खबर है । उसे सोच कर अच्छा लगा । आसान नहीं था यहाँ तक भी आना । अब वह आ ही गई है तो आगे भी जाएगी- अपने ही बलबूते पर । बैसाखियाँ नहीं हूँढ़ती वह । कभी थी ही नहीं उसके पास ।

अमरीका में अजनबी दोस्त बन गए । कहते, ‘मैंडी, अपने सपनों को बांधना नहीं । खुले आकाश में उड़ना सीख ले । छोड़ दे परंपराओं की पटरियों को । यह तेरे लिए नहीं ।’

वह जान गई थी उन पटरियों के मनसूबों को । पलट ली थी अपनी दिशा और पथरीली राहों पर कदम साथ कर चलने के लिए तैयार हो गई ।



पहला पड़ाव, उत्तरी न्यूयॉर्क का एक छोटा सा शहर । उसे बस पाँव रखने भर की जगह चाहिए थी । बहुत बेमामूली सा स्थानीय टीवी स्टेशन । जहाँ वह पत्रकार भी थी और प्रस्तुतकर्ता भी । सब कुछ अपने अनुभवहीन कंधों पर

थाम लिया उसने । वह केवल एक अप्रवासी ही नहीं, औरत भी है, जिसे आम अमरीकियों से कई गुना ज्यादा मेहनत और प्रतिभा के बल पर अपने को सिद्ध करके दिखाना था । दिखा दिया ।

फिर पीछे नहीं पलटी । आगे बढ़ती गई ।

वह तूफानों का पीछा करने वाली लड़की थी । ओकलाहोमा जैसे शहर में वह जुनून की तरह बवंडर को ललकारती मैदान में उतर गई । बीस दिन तक निरंतर तूफान से जूझते लोगों के विध्वंस, उनकी जिजीविषा और हर हालत में टूट कर भी फिर से उठ खड़े होने की

कहानियाँ। जिंदगी को हार कर भी जीतने की शौर्य कथाएँ वह स्क्रीन पर दिखाती रही। वह उस शहर के दर्शकों की तूफान थमने के बाद की धूप बन गई। उसने अपना जुनून ढूँढ़ लिया था। उसे कभी लगा ही नहीं कि वह काम कर रही है। मनदीप प्यार करती है अपने इस जुनून से।

मध्य कैनेडा का वह वीरान, कभी बर्फला, कभी हरियाला विनिपेग बहुत पीछे छूट गया है। माँ रहती है वहाँ, गुरबी भी। कभी लगा ही नहीं कि वहाँ उसका घर है या था।

**दोस्ती प्राण फूँकती है
उसमें, प्यार दम घोटता
है। उसे प्यार-व्यार के
समीकरण समझ में नहीं
आते। लगता है कि प्यार
विलय मांगता है उसके
अस्तित्व का, जो वह कर
नहीं सकती। पहले
उसका भविष्य, उसकी
नौकरी।**

फोन बज रहा था। माँ का है। वह झिझकी।

दो-तीन घंटियाँ बजने दीं। फिर उठा लिया।

‘क्या बात है? फोन नहीं किया तूने बहुत दिनों से?’

‘नई-नई नौकरी है तो थोड़ा बिजी रहती हूँ।’

एक असहज सी चुप्पी।

‘गुरबी कैसा है?’ उसने ही पूछा।

‘अच्छा है। अपनी ओर से मन लगा कर पढ़ रहा है। सोचती हूँ गुरबिंदर कमाने लगे तो मैं भी अपनी टीचरी छोड़ दूँगी।’

‘आप अभी भी छोड़ सकती हैं। मैं जो कमा रही हूँ।’

‘तेरी कमाई से मुझे क्या लेना?’

‘तो ठीक है, फिर गुरबी के कमाने का इंतजार करो।’

‘देख मनदीप, मुझसे ऐसे न बात किया कर। तुझे पता है मैं बेटी की कमाई नहीं लूँगी। तू बस ठीक से शादी कर ले तो मेरी जान भी सुर्खरु हो जाए।’

मनदीप के अंदर कुछ ऐंठने लगा।

‘आप की तबीयत अब ठीक है न?’

‘मुझे क्या होना है?’

‘बस पूछा है।’ खीज एक देश से दूसरे देश के छोर तक तैर गई।

‘अच्छा गुडनाइट। थकी हूँ। सुबह फिर काम पर जाना है।’

दोनों ने फोन रख दिए।

दोनों कुछ इंतजार करती रुकी रहीं।

मनदीप मुँह हाथ धोकर बिस्तर पर लैटी तो दिन भर का लगाया मुखौटा सरक गया। आँखें नमी से धुंधला आईं।

‘माँ, गुरबी पर इतना प्यार ढुलकाती हो। कभी तो मुझसे भी पूछ लेतीं कि मैं कैसी हूँ।’

‘पापा जी, मम्मी बहुत खराब है।’ उसने सुबकते हुए शिकायत लगाई थी।

‘क्यों क्या हो गया?’

‘गुरबी के लिए इतने सारे खिलौने लिए और मुझे एक डॉल भी नहीं लेकर दी।’

‘बस इतनी सी बात।’ पापा जी ने गोद में बिठाकर उसकी दो चोटियों को सहलाया।

‘आज मैं खूब सारे पैसे लेकर आऊंगा। कल काम पर जाने से पहले हम बाप-बेटी चुपके से, ममी के स्कूल से वापिस आने से पहले

ही बाजार जाकर अपनी गुड़िया के लिए गुड़िया लेकर आ जाएंगे। ठीक?’

उसने मुस्कराकर आँखें मटका दीं। पापा को ‘हाई-फाई’ दिया और जाकर दादा-दादी के पास बैठकर स्कूल का काम करने लगी। गुड़िया आँखों के आगे नाच रही थी। सोते वक्त

भी नींद में आखें बंद थीं, पर गुड़िया नाचती रही।

‘बीजी, यह अभी तक आए नहीं। रात बीत चुकी है।’ दलजीत के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

बाबाजी उठ खड़े हुए। ‘टैक्सी कंपनी के डिस्पैच ऑफिस को फोन किया?’

‘जी किया। वह कहते हैं कि यह रात ढाई बजे पैसेंजर को लेकर निकले थे। अभी तक उनकी टैक्सी का कंप्यूटर टर्मिनल चल रहा है। मतलब कि वह अभी भी सवारी लेकर बाहर ही हैं। मैंने डिस्पैचर को कहा कि उनसे कह दो, वह घर पर फोन कर ले। दो घंटे हो गए। कोई उनका फोन भी नहीं आया।’

‘पुत्तर सब्र कर। वाहे गुरु का नाम ले। सब ठीक हो जाएगा।’ बीजी की आवाज खुद काँप रही थी।

दारजी उठ खड़े हुए। पास वाले घर में रहते सुरजीत औलख के घर की तरफ बढ़ गए।



वह सभी कैनेडा में पंजाब से रोजी-रोटी कमाने आए सिख जाट थे। मेहनतकश और हौसले वाले। शून्य से भी कम तापमान में ठंड से भिड़ने निकल पड़ते थे अपनी-अपनी टैक्सियाँ लेकर। दलजीत पंजाब में टीचर थी। उस समय कैनेडा में था टीचरों का अकाल। उसकी तो आते ही नौकरी लग गई। प्रीतम को कोई ढंग की नौकरी मिल नहीं रही थी। सुरजीत ने ही टैक्सी ड्राइवर की नौकरी लगवा दी। अब प्रीतम की अपनी टैक्सी थी।

काम पर जाता तो बीजी दारजी के पाँव छूकर ‘पेरी पौना’ कहता। बच्चों के माथे चूमता, जैसे लाम पर जा रहा हो। आज दलजीत का कलेजा उसकी सुरक्षा के लिए वैसे ही कांप रहा था, जैसे जंग पर गए सिपाहियों की बीवियों के कांपते हैं।

आखिर असली कातिल पर सुई टिक गई। तईस साल का श्वेत लड़का जिसे नशीले पदार्थ खरीदने के लिए पैसे चाहिए थे। शिकार बना सुनसान सड़क पर एक अकेला टैक्सी वाला।

‘रब्ब खैर करे।’ साल भर के गुरबी को बीजी की गोद में डालकर वह बदहवास-सी फोन कर रही थी।

दर्जन भर टैक्सी वाले शहर भर में तलाश रहे थे प्रीतम की टैक्सी को।

शाम सात बजे एक सुनसान सी जगह पर टैक्सी मिल गई। अंदर खून के निशान थे। क्रैडिट कॉर्ड लेने वाली मशीन का मीटर, ट्रिप शीट, पैसे, चाबियाँ सब गायब। प्रीतम नहीं था भीतर।

सब टैक्सी वालों की पत्तियाँ प्रीतम के घर आ आकर इकट्ठी हो गई। मुश्किल घड़ी। सभी अपने पिंड के। सभी का

दुख साझा। सभी की अटकी हुई साँसें साझी। मरद लोग आज के अपने काम में नागा करके निकल गए प्रीतम को हूँढ़ने।

औरतें घबराहट को शब्द पहना रही थीं।

‘बहुत जोखिम का काम है यह टैक्सी चलाना भी।’

‘कई बार मुकाम पर पहुँचकर सवारी बिना पैसे दिए ही भाग जाती है। पैसे न दे तो कोई बात नहीं कभी उलटा इनके पैसे भी छीन लेती है।’

‘इस शहर में टैक्सी वालों की कितनी हत्याएँ हो चुकी हैं। न टैक्सी एसोसिएशन कुछ करती है और न ही पुलिस।’

‘पता नहीं होता कि आदमी घर लौटकर आएगा भी या नहीं।’

‘मैं तो इनसे कहती हूँ कि मत करो यह नामुराद काम जिसमें जान

का जोखिम हो। यह कहते हैं कि फिर बच्चों को कैसे खिलाऊंगा।'

अंधेरे बढ़ते जा रहे थे। भीतर के भी और बाहर के भी। दलजीत हर पल बीतने के साथ सुन्न होती जा रही थी। न कुछ सुन रही थी, न सोच।

बूढ़े सास-ससुर अशक्त और बच्चे सहमे हुए।

दूसरे दिन शाम को प्रीतम मिल गया। बस सांस ही नहीं थी उसमें। नदी के पास वाले कालेज के पीछे से निकलती एक छोटी सी खंडक में लुढ़का हुआ। चालीस निशान थे चाकू के उसके शरीर पर।

स्थानीय अखबार में खबर छपी थी। बस एक लाश मिलने की। बाकी जो उसके साथ ही लाश बन गए, उनका कोई जिक्र नहीं था।

गुरबी कुछ नहीं जानता, समझता। बीजी उठाकर दलजीत की झोली में डाल देती। वह सूनी आंखों से उसे तकती रहती है

बेबस-सी। आंचल में दूध ही नहीं रहा।

मनदीप दरवाजे की ओट से मम्मी को देखती। आने वाले लोग अब छंट गये थे। कितने दिन हो गए। न पापा जी आए न मम्मी ने अपनी गोद में उसका सिर रखा। उसे गुड़िया नहीं चाहिए। वह गुड़ियों

से नफरत करती है अब।

बीजी मनदीप के आगे ज्लेट में कुछ डाल देती हैं और वह चुपचाप खा लेती है। नखरे करना याद नहीं रहा।

उस दिन वह अपने को रोक नहीं पाई। गुमसुम पत्थर की मूर्ति बनी बैठी मम्मी के पास चली गई। धीरे से उनके गले में अपनी नन्ही सी बांहें डाल दीं।

दलजीत ने झटक दिया उसे जोर से।

दूर हो जा मेरी आंखों से।'

बीजी ने लपककर मनदीप को अपनी बांहों में भर लिया। 'क्या करती है दलजीत? मेरे प्रीतम की छवि है हुबहू। इसे देखकर तो कलेजे में ठंडक पड़ती है।'

'पहाड़ जैसी मेरी जिंदगी। यह लड़की जात। कैसे पालूँगी? कैसे पढ़ाऊँगी?' वह फफक पड़ी।

'मैं अकेली जान। कैसे इसे ब्याहूँगी?'

उस दिन माँ ने मनदीप के होने पर विलाप किया था।



वह लड़की जात है। माँ ने सांस-सांस में याद रखा। वह भार है, एक अनचाही जिम्मेदारी।

न माँ मनदीप को याद कराना भूलती थीं और न ही मनदीप कभी भूली।

दारजी छह महीने की बिछुड़न भी न सह सके बेटे की। चले गए।

दादी बच गई मनदीप के मुरझाए चेहरे को घार से पुचकारने के लिए।

‘तेरा चेहरा तो पूर्णमाशी के चाँद जैसा है। कभी न ग्रहण लगे मेरी लाडो को।’ वह दुलरा देती।

‘गुरबचन, तू ही अब मेरा सहारा है। जल्दी-जल्दी बड़ा हो जा।’ माँ को उम्मीद नजर आती।

‘मनदीप, तू इतनी जल्दी-जल्दी क्यों बड़ी हो रही है? थोड़ा रुक नहीं सकती?’

दलजीत को हौल पड़ते हैं। लड़की जात। कुछ उलटा-सुलटा बहक गई तो खानदान की नाक कट जाएगी। लोग कहेंगे बिना बाप की बेटी थी और माँ ने संभाल कर नहीं रखा।

मनदीप पर अब किसी बात का कोई फर्क नहीं पड़ता। सरू के बूटे जैसा कद। पंजाबी खून रगों में। वह स्कूल के हर खेल में आगे। बॉस्केट बॉल की टीम की लीडर। एक दिन बॉल नाक पर लगी और हड्डी टूट गई।

माँ ने देखा तो कलप गई। ‘नाक मुँह भंग हो गया तो शादी कौन करेगा तुझसे?’

मनदीप ने होंठ र्हीच लिए। इस बार नहीं कहा कि मुझे शादी करनी ही नहीं। अब उसकी आवाज नहीं बल्कि उसके मुखोंपे बात करते हैं।

‘देख’, माँ ने घार से समझाने की कोशिश की।

‘मुझे देख। मैं पढ़ी-लिखी थी और नौकरी करती थी तो अकेले दम पर तुम दोनों को पाल रही हूँ न। पढ़ाई में ध्यान लगा। पढ़-लिखकर अपने पांवों पर खड़ी हो जा। कभी किसी की मोहताज न होना पड़े। तू लड़की जात। अभी तू जानती ही क्या है जिंदगी के बारे में।’

तब शायद अठारह साल की थी मनदीप। बहुत गहरे से मम्मी को देखती रही।

उस रात वह जागती रही थी । गुड़िया लाने का वादा करके न आने वाले पापा जी के सामने जाकर बैठ गई ।

‘बहुत प्यार करते थे आप, मुझे फिर भी छोड़ गए न ।’

उस रात आंसुओं के धुंधलके के पार उसने एक चमकीली रोशनाई से लिखी पंक्ति पढ़ी- ‘सब प्यार करने वाले आपको कहीं न कहीं अकेला छोड़ जाते हैं ।’

किसी को वह यह अधिकार नहीं देगी कि कोई उसे फिर से तोड़ सके । वह किसी पर निर्भर नहीं करेगी । न मन से, न तन से और न ही धन से । वह खुद अपना ख्याल रख लेगी ।

चेहरे की नमी को हथेलियों से रगड़ वह झटके से उठ गई ।

अपनी डायरी में एक ही पंक्ति लिखी- ‘अपनी जिंदगी में अपनी प्राथमिकता मैं खुद बनूंगी । कोई और नहीं ।’

बस । यही एक प्रथम और यही अंतिम वाक्य ।



कितने ही सालों तक कोर्ट में केस चला था । गलत लोगों पर शक रहा । आखिर असली कातिल पर सुई टिक गई । तोईस साल का श्वेत लड़के को नशीले पदार्थ खरीदने के लिए पैसे चाहिए थे । शिकार बना सुनसान सड़क पर एक अकेला टैक्सी वाला ।

माँ चीखी थी कोर्ट में ।

उस दिन ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ था कोर्ट में ।

‘तूने सिर्फ उस एक आदमी को नहीं मारा । हम सब को भी जिंदा ही मार डाला ।

कब्रिस्तान बना दिया मेरा घर । तुझे कई-कई कल्लों की सजा मिले ।’

मनदीप कभी नहीं भूलती कि उस दिन माँ ऐसे चीखें मार-मार कर रोई थी, जैसे उसकी चीखें लौटा लाएंगी पापा को ।

उस तोईस साल के श्वेत युवक ने जेल में आत्महत्या कर ली । एक चिट्ठी छोड़ गया था ।

‘मिसेज देओल, मैं माफी का भी हकदार नहीं । आपकी और आपके दोनों बच्चों की शक्तें हर वक्त मेरा पीछा करती रहती हैं ।

अपनी आत्मा पर इतने बड़े बोझ को लेकर जी नहीं सकता। मुझे मालूम ही नहीं कि मैंने क्या कर डाला। हो सके तो मुझे माफ करने की कोशिश करना।'

फिर माँ शांत हो गई थी।

मनदीप की चुप्पी कब दृढ़ता में बदल गई उसे खुद भी पता नहीं लगा।

'माँ, मैं आगे की पढ़ाई अमरीका में जाकर करूँगी।' उसने बता दिया, पूछा नहीं।

दलजीत बेटी को भाँपने की कोशिश करती रही।

'मुझे इस जगह से बाहर निकलना है, बस।'

**वह मंजिल की ओर
बढ़ रही है। भ्रमित
करने के लिए पीछे से
प्यार की आवाजें आती
हैं। वह कभी इनके
भुलावे में आकर भटक
नहीं सकती, खेल
जखर सकती है। इतना
भरोसा है उसे अपनी
मजबूती पर।**

वह निकल गई विनिपेग से। स्पीच पैथोलोजिस्ट बन गई। जिन बच्चों को बोलने में कठिनाई होती वह उन्हें सही ढंग से उच्चारण करना सिखाती। निजी तौर पर भी उनके सैशन लेती और डॉक्टर के ऑफिस में भी।

माँ खुश थी कि बेटी डॉक्टर बन गई।

मैं नहीं खुश। पैसा मिल रहा है पर मन पता नहीं क्या चाहता है? मनदीप सोचती।

'अपने हिसाब से जी, मैच्छी।' दोस्तों की बाँहे धेर लेतीं।

मनदीप सोचती, अपने हिसाब से जीने के लिए दूसरों की बनाई सीधी पटरियाँ छोड़ना अनिवार्य है। राह बदलनी ही होगी। क्या करे?

उसने अपनी यूनिवर्सिटी के परामर्शदाता से मिलने के लिए समय मांगा। पास ही के 'स्टारबक्स' में वह डॉ. ग्लास से बड़ी गंभीरता से मशवरा कर रही थी कि कैसे वह अपने क्रैडिट्स के आधार पर पत्रकारिता की पढ़ाई कर सकती है— एकदम विपरीत दिशा में।

बातचीत के दौरान उसका ध्यान भटक गया। थोड़ी दूर पर बैठा एक भारतीय युवक उसे मंत्रमुग्ध सा देखे जा रहा था। धीर-गंभीर डॉ. ग्लास और ऊपर से यह बाधा। वह जानबूझ कर अनजान बनी उनसे बातें करती रही। दोनों उठने लगे तो वह युवक सीधे उनके पास आ खड़ा हुआ।

‘तुम बहुत सुंदर हो । मैं तुम्हें सराह रहा था । मैं तुम्हारा फोन नंबर नहीं मांगूगा । यह रहा मेरा कार्ड । ठीक समझो तो मुझे फोन कर लेना ।’ कहकर वह पलट गया ।

वह चुप झँगी-सी हाथ में उसका कार्ड धुमा रही थी । डॉक्टर ग्लास मुस्कुरा दिए ।

‘लड़का साहसी है । मैं तो कहूंगा कि उसे मिलने का एक मौका देही दो ।’

मुस्कराहट अब उसके होठों पर भी आ ही गई ।

दीवाना था वह लड़का । मनदीप ने इंटरनेट पर उसके बारे में सब कुछ देख लिया । लगता नहीं था पर वाकई डॉक्टर था ।

उसके लिए फूल और चॉकलेटें लाता । खुद खाना बनाकर उसे न्यौता देता । बार-बार मिलने का आग्रह करता । टाल देती । आदत ही नहीं थी अपना समय, अपनी आजादी किसी से बाँटने की और वह हर मोड़ पर जगह मांगता उसकी जिंदगी में आने की ।

‘देखो मुझे अपना काम करना होता है । मैं यह नौकरी छोड़ दूँगी । मुझे टेलीविजन पत्रकार बनना है । दो साल पत्रकारिता की पढ़ाई करनी है ।’

‘ठीक । मैं आकर चुपचाप बैठा रहूंगा । तुम अपना काम करती रहना ।’

वह आ भी जाता । चुपचाप किसी पत्रिका के पन्नों की आड़ में उसे निहारता रहता ।

मनदीप ने अपने लिए कॉफी का मग बनाया और बैठकर कंप्यूटर पर काम करने लगी ।

वह खड़ा हो गया ।

‘विश्वास नहीं होता?’

‘किस बात का?’

‘तुमने अपने लिए कॉफी बनाई और मुझसे पूछा भी नहीं?’ वह हैरान था ।

मनदीप यूँ ही शांत बैठी रही । बहुत सहजता से कहा,

‘किचन तुम्हारे सामने है । कॉफी, दूध, चीनी सब पड़ा है । बना लो ।’

वह अभी भी सहज नहीं हुआ था ।

‘मैं ऐसी ही हूँ’ कहकर वह फिर काम में लग गई ।

कंप्यूटर पर पढ़ने का बहाना करते हुए मनदीप को लगा कि क्या

गलत किया मैंने? वह भी तो जब छुट्टियों में वापिस कैनेडा माँ के पास जाती है तो उसका कितना मन करता है माँ उसका लाड़ करे। उसकी पसंद की कोई चीज बनाकर उसे खिलाए। माँ ऐसा कुछ भी नहीं करती।

वह कहती, ‘किचन तेरे सामने है। जो मन करता है जाकर बना ले। लड़कियों को खाना बनाना आना चाहिए।’

वह कितनी उदास और खोखली होकर लौटती है माँ के घर से। कितनी खुश और भरापन महसूस करती है अपने दोस्तों के बीच।

सब तरह के दोस्त, विचित्र पर उदारमना।

कैनेडा से आई पंजाबी सिख परिवार की लड़की को समेट लेते हैं अपनी दोस्ती के पाश में, जैसे वह बिलकुल उन्हीं के जैसी हो। जरा भी भिन्न नहीं।

दोस्ती प्राण फूँकती है उसमें, प्यार दम घोटता है। उसे प्यार-व्यार के समीकरण समझ में नहीं आते। लगता है कि प्यार विलय मांगता है उसके अस्तित्व का, जो वह कर नहीं सकती। पहले उसका भविष्य, उसकी नौकरी। इसके अलावा वह किसी भी और बात पर भरोसा नहीं करती। सब धोखा दे देंगे। छोड़ जाएंगे उसे। वह खुद को संभालेगी अपनी ही ताकत पर।

वही दीवाना लड़का उसके साथ एक पार्टी में गया। उस दीवाने का ध्यान उस पर था और मनदीप की नजरों ने उस भीड़ में

ही एक चेहरा पहचान लिया था राष्ट्रीय टेलीविजन के प्रसिद्ध न्यूज एंकरमैन टॉम नेलसन का। वह बैचैन हो रही थी टॉम से बात करने को।

दीवाने ने पूछा था, ‘ड्रिंक लोगी?’

‘न’ उसने बिना उसकी ओर देखे ही मना कर दिया।

शायद वह मैन्स-रूम चला गया। मनदीप ने देखा टॉम अकेला था। तेजी से वह उसके पास जाकर खड़ी हो गई। अपना परिचय दिया। टॉम खुश हुआ उससे मिलकर। एक खूबसूरत लड़की टेलीविजन न्यूज में अपनी जगह बनाना चाहती है। उससे मदद मांग रही है। वह प्रसन्नता से अभिभावक का रोल करने को तैयार हो

गया।

मनदीप वहीं बार काउंटर पर उसके साथ बैठ गई।

टॉम ने उसके लिए भी ड्रिंक ऑर्डर कर दिया।

धूँट भरते हुए मनदीप ने कनेखियों से देखा। दीवाना खचाखच भरी बार में अकेला खड़ा था। पास से गुजरते लोगों के धक्कों से डगमगाता हुआ। निगाहें अडिग थीं बस उसी की ओर देखती हुईं।

शायद घायल हो गया। अपराध बोध जैसा कुछ कराना चाहता होगा। मुझ पर अपना अधिकार दिखा रहा है। मनदीप ने सीधी नजरों से काटा। बिना किसी अपराध बोध या झेंप के।

‘हक जमाने की कोशिश भी नहीं करना।’ एक भौंह ऊपर उठी और कह गई।

मनदीप ने टॉम की ओर अपने शरीर को घुमाया और मुस्करा दी।

नजरें दगाबाज निकलीं। फिर उठ ही गई दीवाने की ओर।

दीवाने की आंखों में आग थी। गुस्से की, नफरत की या चोट खाने की। मनदीप से नजरें मिलते ही वह आग राख में बदल गई। कुछ था उसके चेहरे पर जैसे उसने अपने प्यार की लाश देख ली हो। वह शायद बिलख रहा था। आंसुओं को पलकों से बाहर निकलने की पाबंदी लगाकर।

दीवाने ने भिंचे होंठों से ही ‘बाय’ की मुद्रा में हाथ ऊपर उठाया और झटके से बाहर निकल गया।

मनदीप थोड़ा सा तिलमिलाई। ‘बेवकूफ। यह भी नहीं सोचा कि मैं वापिस घर कैसे जाऊंगी?’

चेहरा भावशून्य था। वह टॉम से बात करती रही। टॉम को भनक भी नहीं पड़ी कि एक शीशमहल टूट गया।



• • •

कितने बरस बीत गए। वह अपनी ही खींची हुई लीक पर आगे बढ़ती रही है। स्पीच पैथोलिजिस्ट का लायसेंस अभी भी है उसके पास। पत्रकारिता की डिग्री भी।

न्यूयॉर्क के उत्तरी भाग में एक छोटा-सा टेलीविजन स्टेशन। प्रोड्यूसर ने पूछा था।

‘मौसम की रिपोर्टिंग कर लोगी? बर्फ और तूफानों में बाहर जाना होगा।’

‘मैं विनियेग, मैनिटोबा से हूँ। बर्फ से डरती नहीं।’ कहा था उसने।



वह अपने को गढ़ रही थी। तराश रही थी। इन छोटे-छोटे स्टेशनों पर पाँव रखकर एक दिन अमरीका के नेशनल टी वी की प्रमुख न्यूज एंकर बुमैन बनने तक की खाहिश रखने वाली, प्रवासी माता-पिता की बेटी।

वह मंजिल की ओर बढ़ रही है। भ्रमित करने के लिए

पीछे से प्यार की आवाजें आती हैं। वह कभी इनके भुलावे में आकर भटक नहीं सकती, खेल जरूर सकती है। इतना भरोसा है उसे अपनी मजबूती पर।

दर्शक पहचानने लगे हैं उसे। मनदीप देओल। स्थानीय टेलीविजन की पत्रकार। एक भारतीय मूल की लड़की, कैनेडा की नागरिक जो अब अमरीका के स्थानीय चैनल पर रोज दिखती है। उसके आत्मविश्वास का आकर्षण अपनी ओर खींचता है आम जन को।

पांच साल हो गए। लंबे बूट पहनकर चेहरे पर बर्फ के थपेड़े झेलते। ब्रांक्स जैसी जगह पर पुलिस और ड्रग बेचने वालों की गोलीबारी में हताहत लोगों के बीच खड़े होकर, वहाँ के रहनेवालों की बातें रिकॉर्ड करते। निडर है वह।

मैं महज लड़की जात नहीं रह गई हूँ अब। वह सोचती है। मैं अतीत की जिन गलियों से होकर यहाँ आई हूँ वहाँ सिर्फ ठोस बर्फ है। उस बर्फ पर खून के फूल खिलते हैं, ख्वाबों के नहीं। मैंने उन फूलों की विजय माला पिरो कर अपने ही गले में डाल ली है।

कोई भी काम जो पुरुष पत्रकार कर सकता है, मैंडी भी कर सकती है। सबको पता लग रहा है।

कितने छोटे छोटे टीवी स्टेशनों से ठिठुरते, झुलसते, तपते वह निखरी है। पत्रकार है अब वह अमरीका के नेशनल टेलीविजन की। खुद बड़े-बड़े प्रोड्यूसर, निर्देशक और वरिष्ठ पत्रकार आगे बढ़ कर आते हैं उसको अपनी मंजिल की ओर पहुँचाने।

उसने सिर्फ पाया ही पाया है। कुछ खोया नहीं है उसने। जो खो चुकी उससे बढ़कर क्या खोएगी भला? वह निर्भीक, साहसी और अथक परिश्रमी पत्रकार है। लोग अब पूछते नहीं कि कौन है वह? जानते हैं कि कौन है वह।

क्रिसमिस की भीड़ – रॉकफैलर सेंटर पर। एक जगमगाते बृहद पेड़ को देखने जैसे दुनिया भर के लोग इकट्ठे हो गए हों। मनदीप जल्दी से रास्ता बनाती न्यूज स्टूडियो की ओर बढ़ रही है। भीड़ है, पर कोई किसी को धकेल नहीं रहा। लोगों का समूह, युवक युवतियाँ,

किशोर, एकाध प्रौढ़ भी। बूढ़ा कोई नहीं। बच्चों को कसकर पकड़े हुए माँ-बाप। छोटे बच्चों को कंधे पर उठाए हुए लोग। सड़क के किनारे पर्यटकों को न्यूयॉर्क के स्मृतिचिह्न बेचते रेहड़ी वाले। क्रॉसिंग पर भीड़ का मार्गदर्शन करते नीली वर्दी में पुलिस वाले।



मनदीप ने देखा कि इस स्ट्रीट पर वाहनों का आना-जाना बंद कर दिया गया था। कुछ पुलिस के घुड़सवार सुरक्षा के लिए धीरे-धीरे गुजर रहे थे और कुछ लोग उन्हीं को देखने में व्यस्त रुक गए थे। इस रुकावट से उसकी खीज और बढ़ गई। देरी हो जाने के कारण वह लोगों के इधर-उधर बलखाती आगे सरकने की कोशिश कर रही थी। रुकना पड़ा। सामने कोई बच्चे को कंधों पर उठाए रुका हुआ था ताकि बच्चा अच्छी तरह से क्रिसमिस का यह नजारा देख ले।

मनदीप की अधीरता बढ़ गई। दीवार की तरह वह रुकावट बना खड़ा था।

‘एक्सक्यूज मी’ उसने कहा। शायद उसने शोर में सुना नहीं।

धीरे से मनदीप ने उसके कंधे पर एक उंगली से टकटकाया -
‘एक्सक्यूज मी’। इस बार खीज ऊंची आवाज में निकली।

वह पलटा।

क्रिसमिस-ट्री से जैसे एक विशाल आग का भूम्भूका उठा। सब
कुछ ठहर गया।

वही था।

दोनों एक दूसरे को देख रहे थे। भीड़ उन्हें धीमे से ठेल रही थी।

वह ही पहले संभला। मुस्कराया- ‘हाय’

‘हाय’। मनदीप के अंदर से जैसे एक प्रतिध्वनि आई। मुस्करा न
सकी।

‘बधाई। सुना है अब बहुत सफल और प्रसिद्ध पत्रकार बन गई
हो। जो तुम चाहती थी सब मिल गया।’

मन में आया कि कहे ‘शायद हाँ, पर तुम जैसा दीवाना मुझे फिर
कभी नहीं मिला।’

बस मुस्करा दी। इससे पहले कि कुछ कह पाती वह भीड़ के बहाव
में दाखिल हो चुका था।

मनदीप ने सिर को जोर से झटका जैसे सारा अंतीत झटक रही
हो।

कंधे पर बैठे बच्चे ने पीछे मुड़कर मनदीप को प्यारी सी नजरों से
देखा। फिर हँस पड़ा।

उसके छोटे-छोटे दूधिया दाँत चमक उठे।

मनदीप वहीं ठिठक कर उसे जाते हुए देखती रही हालांकि ध्यान
था कि उसे भी आगे बढ़ना है।

119 Osage Road, Wayne. NJ 07470. USA

Mob. 973 978 3719 email : aksk414@hotmail.com

इतालवी कहानी

पुकारती ट्रेन लुइजी पीरांडेल्लो

अनुवाद : सत्यजीत प्रकाश

बेल्लुका एक अत्यंत विनम्र, सुशील, सौम्य एवं आज्ञाकारी व्यक्ति है। वह एक ऑफिस में अकाउंटेंट के पद पर कार्यरत है। एक दिन ऑफिस में वह असामान्य तरीके से व्यवहार करने लगता है। ऑफिस में बॉस और अन्य सहकर्मी उनके इस व्यवहार को देखकर उसे पागल समझते हुए उसे मनोरोग के अस्पताल में ले जाते हैं। यहाँ तक कि डॉक्टर भी उसके असामान्य व्यवहार को नहीं समझ पाते हैं। वह हठपूर्वक लगातार एक ही वाक्य दोहरा रहा था- ‘ट्रेन ने पुकारा, ट्रेन ने पुकारा’। कोई भी इस वाक्य का अर्थ नहीं समझ पा रहा था, सिवाय उसके एकमात्र पड़ोसी के।

बड़बड़ा रहा है। देखो फिर से बड़बड़ा रहा। शायद दिमागी बुखार के लक्षण हों। डॉक्टर आपस में ऐसी बातें कर रहे थे और बेल्लुका के दो-तीन सहकर्मी जो वहाँ मौजूद थे, डॉक्टर की बातों से सहमति जता रहे थे।

उसके सभी सहकर्मी डॉक्टरों द्वारा बताई जा रही विभिन्न बीमारियों के वैज्ञानिक नामों की घोषणा कर के एक खास तरह के आनंद का अनुभव कर रहे थे। उन्मादपन, उन्मादपन... एन्सेफलाइटिस... दिमागी छिल्की की सूजन... दिमागी बुखार....!

सर्दियों वाली सुबह थी। उसके सभी सहकर्मी, जो बाहर से दुखी और व्यथित होने का दिखावा कर रहे थे, असल में



अंदर से बहुत खुश थे ।

-मर जाएगा? पागल हो

जाएगा?

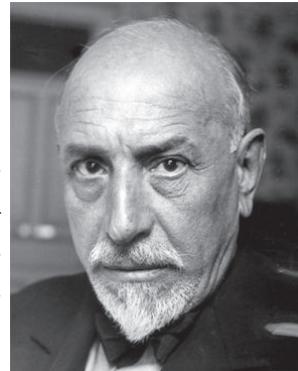
-मम्म...

-मर जाएगा, ऐसा नहीं
लगता ।

-पर क्या बोल रहा है? क्या
बड़बड़ा रहा है?

लुइज़ी पीरांदेल्लो

: (1867-1936) इतालवी भाषा
के महान कथाकार, नाटककार
और कवि । 1934 में साहित्य
के लिए नोबेल पुरस्कार से
सम्मानित ।



वही, एक ही बात । ट्रेन ने
पुकारा । ट्रेन ने पुकारा । ऐसा ही कुछ बड़बड़ा रहा है ।

बेचारा बेल्लुका!

और कोई भी उसकी उस मनःस्थिति को नहीं समझ पा रहा
था, जिसमें वह बेचारा वर्षों से घुट-घुट कर जी रहा था । उसकी
सारी असामान्य हरकतें पागलपन के लक्षण प्रतीत हो रही थीं ।
उसकी परिस्थिति सामान्य और स्वाभाविक थी, बशर्ते कोई
उसकी मनःस्थिति को समझ पाता ।

वास्तविकता यह है कि बेल्लुका ने कल शाम को ही अपने
बॉस के खिलाफ जमकर बगावत की थी । गुस्से में उसने अपने
बॉस की फटकार पर तीखी प्रतिक्रिया देते हुए मानो उसकी ओर
जोर का झपट्टा मारा हो । हमेशा से बहुत ही शांत, विनम्र और
आज्ञाकारी रहे बेल्लुका से इस तरह का असामान्य व्यवहार सभी
की कल्पना से परे था । इसलिए सभी को लग रहा था कि शायद
वह सचमुच में पागल हो गया है ।

-अंतर्मुखी । एक सहकर्मी ने उसे परिभाषित किया । अंतर्मुखी
बेचारा बेल्लुका । बिना किसी की तरफ ध्यान देते हुए अपने
उबाऊ अर्थात् अकाउटेंट के काम में व्यस्त रहता था । हमेशा एक
ही काम - डेटा की एंट्री, कर्मचारियों के खातों एवं ऑफिस के
लेन-देन के आँकड़ों की जानकारी रखना एवं बही-खाता, पुस्तकों,
फाइलों इत्यादि से घिरे रहना और गधे की तरह काम करना ।
रोज-रोज एक ही काम उस जानवर की तरह करना, जिसकी
आँख पर पट्टी लगी हो ।

खैर, ऐसा वर्षों से बेचारे बेल्लुका के साथ इस ऑफिस में हो
रहा है । उसे ही सबसे ज्यादा काम करना पड़ता । किसी को उस
पर दया तक नहीं आती । सभी उसके भरोसे ऑफिस का सारा
काम छोड़ जाते । और बेल्लुका भी सबकुछ नजर अंदाज करते हुए

वर्षों से एक मूढ़ व्यक्ति की तरह वहाँ काम कर रहा है। अब तो वह आदी हो चुका है। वह इसे अपना भाग्य समझकर सबकुछ झेल रहा है।

सच कहें तो समझ नहीं आता कि उसके विद्रोह का कारण मानसिक असंतुलन है या कुछ और।

कल से ही उसमें विद्रोह की भावना है - खासकर अपने बॉस के प्रति।

सुबह से ही उसका व्यवहार कुछ अजीब सा है। इतने वर्षों में पहली बार ऑफिस देर से आया। वो भी आधे घंटे की देरी से। उसके चेहरे पर उसके बगावती सुर की झलक साफ-साफ दिख रही थी। ऐसा लग रहा था मानो उसकी आंख पर बँधी पट्टी खुल गई हो और वह आस-पास हो रही गतिविधियों को देखने और समझने लगा हो। आज उसके दोनों कान बंद हो गए हों किसी भी तरह के अनुचित आदेश को सुनने के लिए।

आज सुबह से ही वह बहुत प्रफुल्लित था। सारा दिन ऑफिस में कुछ भी काम नहीं किया था।

शाम को बॉस उसके कमरे में दिन-भर का लेखा-जोखा लेने पहुँचे।

‘ऐसे कैसे? आज तुमने दिन भर कुछ भी नहीं किया?’ बॉस ने कहा।

बेल्लुका निर्लज्जता से उसकी ओर देखा और हँसते हुए हाथों से कुछ इशारा किया।

‘मतलब क्या है, तुम्हारे इशारे का?’ बॉस ने उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे हिलाते हुए बोला - ‘ओए बेल्लुका!'

‘कुछ नहीं।’ फिर बेल्लुका निर्लज्ज भाव से मुस्कुराते हुए



अनुवाद
सत्यजीत प्रकाश

अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय,
हैदराबाद के इटालियन विभाग में असिस्टेंट
प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

जीवन के प्रति
निराशावादी नजरिया
रखने वाला बेल्लुका आज
काव्यात्मक शैली में
आसमान को छू रहे बर्फाले
पहाड़ों एवं कीचड़ से
लथपथ धुमावदार पूँछ
वाले विशालकाय व्हेल
और सेटासीन की बात
कर रहा था।

भोलोपन से कहा - 'ट्रेन महाशय। ट्रेन।'

'ट्रेन? क्या ट्रेन?'

'क्या अनाप - शनाप बक रहे हो? कल रात ट्रेन ने मुझे पुकारा। मैंने सीटी सुनी।'

'ट्रेन?'

'हाँ बॉस, ट्रेन। और पता है मुझे कहाँ ले गई? साइबेरिया.. . और कांगो के जंगलों में.. यह सब पल भर में हो गया, महाशय।'

ऑफिस के अन्य सभी कर्मचारी बॉस को चिल्लाते हुए देखकर उस कमरे में आ गए। सभी बेल्लुका की बातें सुनकर जोर-जोर से हँसने लगे।

उस शाम बॉस का मिजाज खराब हो गया और उसने हमेशा की तरह बेल्लुका को खरी-खोटी सुना दी। परंतु आज बेल्लुका ने पलटकर जवाब दिया। उसने ऐसा इसलिए किया कि शायद उसने ट्रेन की पुकार सुनी जो उससे कह रही थी, बस अब और नहीं।

और फिर उसके सभी सहकर्मी बलपूर्वक उठाकर उसे मनोरोग के अस्पताल ले आए।

अस्पताल में भी वह लगातार उसी ट्रेन की बात कर रहा था। वीरान, अंधेरी रातों में दूर से आने वाली दुखद, निराशाजनक एवं उदास सीटी बजाने की नकल कर रहा था। और फिर एकाएक कहने लगा, 'मित्रो, ट्रेन निकल रही है, ट्रेन निकल रही है। कहाँ के लिए? कहाँ के लिए?'

और फिर सभी की उदास, झुर्रियों से भरे कांतिहीन आंखों में एक बच्चे की तरह देखते हुए कुछ-कुछ बकता जा रहा था। हमेशा मशीन की तरह काम करने वाला और आंकड़ों, लेखा-जोखा, हिसाब-किताब में खोए रहने वाला बेल्लुका के मुँह से अनसुनी, अद्भुत, अकल्पनीय, असाधारण एवं विलक्षण काव्यात्मक बातें निकल रही थीं। जीवन के प्रति निराशावादी नजरिया रखने वाला बेल्लुका आज काव्यात्मक शैली में आसमान को छू रहे बर्फाले पहाड़ों एवं कीचड़ से लथपथ घुमावदार पूँछ वाले विशालकाय क्लेल और सेटासीन की बात कर रहा था। अनेक अनसुनी, काल्पनिक बातें।



जो लोग मुझे अस्पताल में उसके भर्ती होने की सूचना देने आए, मुझमें किसी प्रकार के अचरज एवं विस्मय का भाव नहीं देख पा रहे थे।

मैंने शांतिपूर्वक उनकी बातें सुनीं। मेरी चुप्पी दर्द भरी थी। फिर भी झिझकते हुए मैंने कहा - 'डॉक्टर महोदय, बेल्लुका पागल नहीं है। आप साबित करें कि वह पागल नहीं है। उसके साथ कुछ अनपेक्षित-सा हुआ है, जिसे कोई आसानी से नहीं समझ सकता, क्योंकि कोई भी उसकी अब तक की जिंदगी के बारे में नहीं जानता है। उसका यह व्यवहार बहुत ही स्वाभाविक है। मुझे यकीन है कि एक बार उससे मिलने और बात करने के बाद आप लोगों को आसानी से समझा पाऊंगा।'

हॉस्पिटल के उस कमरे में, जहाँ बेल्लुका भर्ती था, वहाँ तक जाते-जाते मन ही मन मैं सोच रहा था - कैसे कोई बेल्लुका की तरह जी सकता है? किसी को अगर उसकी तरह जीना हो तो उसकी कल्पना ही असहनीय और असंभव लगती है। यह सही है कि जीवन में आई अप्रत्याशित बाधाएँ जीवन की गति को रोक देती हैं। रास्ते का एक साधारण काँटा भी असाधारण प्रभाव दिखा जाता है। परंतु मनुष्य को जीवन की विपरीत परिस्थितयों से उभरकर आगे बढ़ना चाहिए और एक नई शुरुआत करनी चाहिए। कभी-कभी केवल पूँछ का दिखना भी हमें राक्षस होने का एहसास दिला जाता है। पर वास्तविकता में वह हमारे अंदर का राक्षस होता है। फिर जब सावधानीपूर्वक उस पूँछ को देखा जाए तो वह मात्र एक साधारण पूँछ होती और उसमें कोई भी राक्षसी भाव नहीं होता।

मैंने कभी किसी को बेल्लुका की तरह जीते नहीं देखा था।

मैं उसका पड़ोसी था और केवल मैं ही नहीं अन्य सभी किरायेदार भी यही सोचते थे कि कोई भी व्यक्ति बेल्लुका की तरह कैसे जी सकता है?

उसके परिवार में तीन अंधे थे - उसकी पत्नी, सास और सास की बहन। उसकी पत्नी की माँ और मौसी दोनों मोतियाबिंद से पीड़ित थीं और उसकी पत्नी पूर्णतः अंधी थी।

तीनों ही चाहते थे कि उनकी सेवा हो। सुबह से शाम तक वे चिल्लाते रहते और कोई भी उन्हें देखने तक नहीं आता, क्योंकि

वह उन तमाम
डॉक्टरों, नसों
एवं सहकर्मियों
पर हँस रहा था
जो यह समझते
थे कि वह पागल
हो गया है।

अब किसी को उनकी जस्तरत नहीं थी। उन तीनों के अलावा घर में दो विधवा बेटियाँ भी रहती थीं। एक के चार और दूसरे के तीन बेटे थे। दोनों बेटियाँ भी उन लोगों की सेवा नहीं करती थीं। हाँ, कभी-कभार वे अपनी माँ की थोड़ी बहुत मदद कर देतीं।

पूरे परिवार का भरण-पोषण एक सीमित आमदनी की नौकरी से कैसे हो पाता? इसलिए वह शाम में ऑफिस से आने के बाद भी दस्तावेजों की नकल उतारने का काम करता था। घर का माहौल बिलकुल भी अच्छा नहीं था। सभी पांचों औरतें एवं सातों बच्चे अर्थात् बारह सदस्यों का पूरा परिवार आपस में लड़ते-झगड़ते एवं चीखते-चिल्लाते रहते थे और इन परिस्थितियों में बेल्लुका दस्तावेजों की नकल उतारने का काम लगातार करता रहता।

तीनों बुढ़िया औरतें उग्र तरीके से चीखती, चिल्लाती, झगड़ती हुई घर के सारे सामान जैसे फर्नीचर, कप-प्लेट, पौधा, फूलदान इत्यादि तोड़ देती थीं। उनकी लड़ाइयों का कारण अजीबों-गरीब होता था। वे कभी इस बात को लेकर झगड़ पड़तीं कि आज पलंग पर बीच में कौन सोएगा, तो कभी उनकी बेटियों के बेटे उनके पलंग पर सोने क्यों आ गए, इन बातों को लेकर। उन तीनों में से कोई भी बीच में नहीं सोना चाहती थी।

फिर अंततः बड़ी मुश्किल से वे शांत होतीं। बेल्लुका इन सभी के बीच दस्तावेजों की नकल उतारने का काम तब तक करता जब तक नींद से उसकी आंखें बंद न होने लगतीं या हाथ से कलम स्वतः न गिर पड़ती। फिर वह बिना कपड़े बदले एक टूटे और पुराने सोफे पर जाता और शीघ्र ही गहरी नींद में सो जाता। सुबह वह बड़ी मुश्किल से उठता और वगैर नींद पूरी किए बेसुध अवस्था में ही ऑफिस के लिए निकल पड़ता।

महोदय, मात्र इन्हीं कारणों से वह ऐसा व्यवहार कर रहा है जो बहुत ही स्वाभाविक और सामान्य है।

मैं जब उससे अंदर मिला तो उसने ही मुझे ये सारी बातें



बताईं। अपने साथ घटित एक-एक घटना की उसने विस्तारपूर्वक जानकारी दी। हाँ, यह सच है कि आज उसने हद ही कर दी, परंतु महोदय उसका यह व्यवहार तो जायज ही है। वह उन तमाम डॉक्टरों, नर्सों एवं सहकर्मियों पर हँस रहा था जो यह समझते थे कि वह पागल हो गया है।

-हो सकता है ऐसा कहा हो, तो फिर...? डॉक्टर ने कहा, -महाशय, बेल्लुका के लिए बाहरी दुनिया का अस्तित्व लगभग खत्म हो चुका है। वह एक पल की राहत की सांस लिए बिना हमेशा ऑफिस के काम में लगा रहता था। लगातार काम करता, ठीक उस जानवर की तरह जिसकी आँखों पर पट्टी लगी हो या उस चक्की की तरह जो लगातार चलती रहती है। वह बाहरी दुनिया के संपर्क से दूर अपने मनहूस अस्तित्व की पीड़ा में डूबा रहता। वर्षों से वह इसी तरह जी रहा है। उसके लिए बाहरी दुनिया का अस्तित्व नगण्य है।

अभी परसों रात की ही बात है। काम से थककर चूर हो कर वह सोफे पर सोने गया, परंतु अत्यधिक थकान के कारण वह सो नहीं पा रहा था और इसी बीच रात के गहरे सन्नाटे में उसने ट्रेन की सीटी सुनी। और उसे ऐसा लगा मानो उसके बंद कान अब खुल गए हों। ट्रेन की उस सीटी ने उसे जगा दिया। उसके जीवन के सारे कष्टों एवं दुखद अनुभवों को उससे दूर ले गई हो। उसे ऐसा लगा मानो उसने किसी बंद कब्र से बाहर निकलकर बाहर की खूबसूरत दुनिया की सैर कर ली हो।

उसने अपने आपको उस कंबल से ढके रखा, जिसे प्रायः रात में सोते वक्त वह फेंक दिया करता था। और रात भर वह उस ट्रेन की सोच में डूबा रहा।

अपने घर के तनावपूर्ण वातावरण एवं अपनी सारी पीड़ाओं को भूल कर वह एक बहुत बड़ी बाहरी दुनिया में चला गया। वह ट्रेन



उसे कई खूबसूरत शहरों जैसे फ्लोरेंस, बोलोन्या, तोरीनो, वेनिस इत्यादि उन तमाम शहरों में ले गई, जहाँ उसने अपनी जवानी के कई खूबसूरत पल बिताए थे। वह उन तमाम खूबसूरत पलों में खो गया, जिसे वह वर्षों पहले जिया करता था। परंतु दुर्भाग्यवश अब उसकी स्थिति आंखों पर पट्टी लगे जानवर की तरह या उस चक्की की तरह है, जो एक ही जगह धूमती रहती है।

बाहरी दुनिया उसके लिए बंद हो गई, इसका उसे वर्षों से एहसास ही नहीं हुआ। हमेशा वह घर और ऑफिस के बीच ही उलझा रहा। मगर अब उसकी आत्मा ने बदलाव की अनुभूति की है। उसने एक जागृत कल्पना के साथ कई ज्ञात और अज्ञात शहरों, पर्वतों, पहाड़ों, सागरों इत्यादि के बीच खुद को पाया और उसी रोमांच और जोश का अनुभव किया। उसने देखा कि इस संसार में करोड़ों लोग अलग-अलग तरह से जीवन-यापन कर रहे हैं। जिस प्रकार वह एक कष्टप्रद असहनीय जीवन जी रहा है, उसी प्रकार अनंत नीले

आसमान को छूती बर्फीली पहाड़ियाँ भी। हाँ, हाँ उसने देखा, अपनी ही तरह नदियों, समुद्रों और जंगलों को। अब अंततः उसने भी बाहरी दुनिया देख ली है। खुद को सांत्वना दे सकता है। हाँ, कभी-कभी अपनी यथार्थवादी दुनिया से दूर काल्पनिक दुनिया की ताजा हवा में सांस जरूर लेना चाहेगा।

अब बहुत हो गया।

बेशक, पहले ही दिन उसने हद कर दी। अचानक उसने बाहरी दुनिया देख ली और उससे प्रभावित होकर विद्रोह कर दिया जो ठीक नहीं था। अब वह बॉस से माफी मांगने और पहले की ही तरह काम पर लौटने के लिए पूरी तरह आश्वस्त है। अब बॉस को उससे पहले जैसे व्यवहार की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। उसे कभी-कभी छोटी यात्राएँ करने की छूट देनी चाहिए, ताकि वह जा सके, कभी साइबरिया तो कभी कांगो के जंगलों में।

यह सब पलभर में किया जा सकता है महोदय, क्योंकि उसे अब ट्रेन पुकारती है...!

असिस्टेंट प्रोफेसर, स्पेनिश एवं इतालवी अध्ययन विभाग, अंग्रेजी एवं विदेशी भाषा विश्वविद्यालय, द्वितीय तल, कक्ष संख्या - 34, तरनाका, हैदराबाद - 500007





सुधीर विद्यार्थी

सुप्रसिद्ध लेखक और जीवनीकार। क्रांतिकारी आंदोलन पर दो दर्जन पुस्तकें। सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'क्रांति की विरासत'।

मन्मथ नाथ गुप्त : एक क्रांतिशिखा

/स्वाधीनता आंदोलन के कई रूप हैं। वह कैसा था, उसके लक्ष्य कितने महान थे, कितना सामाजिक सौहार्द था और देश के क्रांतिकारियों के त्याग और संघर्ष का क्या योगदान था, इन मामलों को आलेख उद्घाटित करता है।/

मन्मथनाथ गुप्त से मैं पहली बार मिला था निजामुदीन, पूर्वी दिल्ली के एक मकान में दुतल्ले पर, जहाँ उनकी रिहायश थी। वे इमरजेंसी के बाद के दिन थे। मेरे चरणस्पर्श करने पर दुबारा ऐसा न करने की हिदायत देते हुए उन्होंने उम्र के फर्क के बावजूद पहले ही दिन से मुझसे मित्र सरीखा व्यवहार करना शुरू कर दिया। उस दिन सब तरफ किताबों से भरा-पूरा उनका वह कक्ष मेरे लिए स्वप्नलोक सरीखा था, किसी झरोखे के खुल जाने जैसा।

मन्मथ दा काकोरी कांड में हिस्सेदारी करने वाले प्रमुख क्रांतिकारी थे। मेरे लिए यह अत्यंत रोमांचकारी था कि 9 अगस्त 1925 को लखनऊ के निकट की गई सरकारी खजाने की इस लूट के

मुकदमे में फांसी की सजा पाने वाले रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला, रोशनसिंह और राजेंद्रनाथ लाहिड़ी के हमजोली होने का उन्हें गौरव प्राप्त था।

मन्मथ नाथ गुप्त को देखना और उनसे बातें करना क्रांति युग के उस इतिहास से जीवंत साक्षात्कार करने जैसा था, जिसने अपने समय में मुक्तियुद्ध की अनोखी इबारत रची थी। मेरे लिए यह जानना और भी प्रेरक था

कि चंद्रशेखर आजाद को क्रांतिकारी दल में लाने के साथ ही काकोरी के साथियों के मध्य मन्मथ नाथ गुप्त ने ही अनीश्वरवाद पर विर्मर्श की शुरूआत की थी, जबकि उनके दूसरे साथी अभी धर्म की भूल-भूलैयों में भटक रहे थे तथा दल के नेता शर्चंद्रनाथ सान्याल उस समय तक अध्यात्म के पैरोकार बने हुए थे।

मैं जब मन्मथ नाथ गुप्त से मिला, तब वे उम्र के 65 वर्ष पार कर चुके थे। कद दरम्याना। मजबूत कद काठी। सिर पर बाल कम। आंखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा। आवाज में गजब की कड़क। अपनी बात को मजबूती से कहने का उनका ढंग उनकी क्रांतिकारी प्रवृत्ति को दर्शाता था। उनकी पुस्तक ‘भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास’ पढ़कर मुझे समग्रता में उस कालखण्ड को समझने में मदद मिली, जिसके एक अध्याय के वे स्वयं निर्माता थे।

मन्मथ दा के राजनीतिक जीवन की शुरूआत उनके शहर बनारस में असहयोग आंदोलन से हुई, जब उनके पिता वीरेश्वर

गुप्त ने अर्ध-सरकारी विद्यालय की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। मन्मथ दा और उनके भाई मनमोहन ने भी सरकारी स्कूल छोड़कर राष्ट्रीय विद्यालय में दाखिला ले लिया जहां असहयोगी शिक्षकगण कृपलानी के नेतृत्व में काम कर रहे थे। वे अब कर्माइकल पुस्तकालय जाने लगे। देश-दुनिया को जानने की बेचैनी रहने लगी।

उन दिनों इंग्लैण्ड के युवराज के बनारस आने पर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के पर्चों का वितरण करते हुए मन्मथ नाथ गुप्त गुदौलिया से मारवाड़ी अस्पताल के बीच गिरफ्तार कर लिए गए, जिस पर खरे घाट मजिस्ट्रेट ने उन्हें तीन महीने की सजा दी। 13 मार्च 1922 को फैजाबाद जेल से छूटने के बाद वे विद्यालय पहुंचे तो वहाँ का नजारा बदल चुका था। गांधी ने चौरी-चौरा की हिंसा के सवाल पर आंदोलन वापस ले लिया था। इससे जिन बहुत से अध्यापकों और छात्रों की उन पर से आस्था हट चुकी थी उनमें मन्मथ नाथ गुप्त भी थे।

चंद्रशेखर आजाद भी असहयोग में पकड़े जाकर ‘आजाद’ नामधारी बन चुके थे। इसी समय बनारस में दो युवक आए, जिनमें एक शर्चीद्रनाथ बख्शी थे। उन्होंने एक छोटा कमरा किराए पर लेकर ‘कल्याण आश्रम’ का बोर्ड लगा दिया। भाई मनमोहन उनके संपर्क में आ गए। मन्मथ नाथ गुप्त ने एक दिन देखा कि भाई के हाथ में शर्चीद्रनाथ सान्याल की लिखी ‘बंदी जीवन’ की प्रति है। पूछा, ‘कहाँ से मिली?’ इस पर भाई ने चुप्पी साध ली। पर उन्होंने वह पुस्तक जल्दी ही पढ़ डाली। बोले, ‘ऐसी पुस्तकें मैं और पढ़ना चाहता हूँ।’ सुनकर भाई ने जवाब नहीं दिया। फिर कहा कि वे स्वयं चलकर पुस्तक का चुनाव कर लें। जिस पुस्तकालय में मन्मथ नाथ गुप्त

अपने भाई के साथ पहुंचे वह ‘कल्याण आश्रम’ था। उसे संचालित करने वाले वे दो युवक भी वहाँ उपस्थित थे, जिन्होंने उनके भाई को उस जगह से जाने का इशारा कर दिया। बात राजनीति पर होने लगी और मन्मथ नाथ गुप्त जल्दी ही उस गुप्त समिति में भर्ती कर लिए गए जो क्रांतिकर्म के लिए बनी थी।



युवा मन्मथ नाथ गुप्त

इस बीच उन दो युवकों की जगह बंगाल से आ गए योगेशचंद्र चटर्जी। सुखद यह रहा कि योगेश दा और यहां पहले से काम कर रहे शर्चीद्रनाथ सान्याल जी ने जल्दी ही साथ-साथ काम करना शुरू कर दिया। दल का नाम ‘हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसियेशन’ रखा गया। उसके संविधान की भी रचना की गई, जिसका तात्कालिक उद्देश्य शस्त्र बल से देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करना तय हुआ। यह भी घोषणा की गई कि क्रांतिकारी ऐसे समाज के निर्माण के लिए समर्पित होंगे, जिसमें एक

**हाथों में हथकड़ी थी
और कंधों से कमर
तक चमड़े का पट्टा
था, जिसका एक छोर
सिपाही पकड़े हुए
था। मन्मथ नाथ गुप्त
को घर से इसी तरह
खुदाई चौकी थाने
तक लाया गया।**

मनुष्य द्वारा दूसरे का शोषण संभव न हो। संविधान में और भी चीजें थीं। इसमें समाजवाद या वर्ग-संघर्ष का कोई उल्लेख नहीं था। इसकी पूरी विषयवस्तु में न हिंसा का पक्ष लिया गया था, न शोषण का। प्रजातंत्र लक्ष्य था, पर समाजवाद की बात अभी थोड़ी दूर थी। क्रांतिकारियों के पास सान्याल जी जैसे बौद्धिक और योगेश दा की तरह समर्पित नेतृत्व की अकूत पूँजी थी, जिसके बल पर उन्हें भविष्य का रास्ता तय करना था। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि असहयोग आंदोलन

की वापसी के बाद क्रांतिकारियों को दो मोर्चों पर अपना संग्राम जारी रखना पड़ा। एक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध समझौताविहीन संघर्ष, तो दूसरा, गांधी की ओर से क्रांतिकारी दल की निंदा का प्रत्युत्तर देते हुए अपनी लड़ाई को विचार के स्तर पर निरंतर तेज करना।

क्रांतिकारी दल अपने संग्राम में जुट चुका था। उस समय तक क्रांतिकारी संगठन का काम धनी और देशद्रोही व्यक्तियों के घरों पर डाके डाल कर चलाया जाता था। इस बार 9 अगस्त 1925 को काकोरी के निकट रेल रोककर सरकारी धन की डकैती रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में की गई, जिसमें अशफाकउल्ला, राजेंद्र लाहिड़ी,

शर्चींद्रनाथ बख्शी, मुकुंदीलाल, कुंदनलाल गुप्त, मन्मथनाथ गुप्त, चंद्रशेखर आजाद, बनवारीलाल और केशव चक्रवर्ती ने हिस्सेदारी की।

काकोरी के बाद बनारस में सरगर्मी थी। मन्मथ दा के पीछे खुफिया पुलिस लग गई।

एक सवेरे घर के दरवाजे पर दस्तक हुई। बाहर निकले तो एक अधिकारी ने सीने पर रिवाल्वर तान दिया। कहा, ‘मैं तुम्हें सम्राट के नाम पर गिरफ्तार करता हूँ।’ पीछे संगीनों वाली अनेक बंदूकें। उनके हाथों में हथकड़ी डाल दी गई। तलाशी में कोई हथियार नहीं, ‘पीला पर्चा’ मिला जो ‘हिप्रस’ का संविधान था। यह सब उनके पिता और भाई के सामने हुआ। इसी समय उन्हें पता चल गया कि दूसरी जगहों पर भी ऐसा हो रहा है। शाहजहांपुर में दल के नेता बिस्मिल और कुछ अन्य भी पुलिस की गिरफ्त में आ गए। नहीं पकड़े गए तो चंद्रशेखर आजाद और कुंदनलाल गुप्त।

हाथों में हथकड़ी थी और कंधों से कमर तक चमड़े का पट्टा था, जिसका एक छोर सिपाही पकड़े हुए था। मन्मथ नाथ गुप्त को घर से इसी तरह खुदाई चौकी थाने तक लाया गया। चार साल पहले वे एक असहयोगी बनकर यहां आए थे लेकिन अब क्रांतिकारी के रूप में उनका रूपांतरण हो चुका था। वे इससे प्रसन्न थे। जेल के भीतर पहुंचे तो उनकी हथकड़ियां निकाल कर बेड़ियां पहना दी गईं। उनके लिए एक कोठरी तैयार थी। उन्हें तसला, कटोरी और मूँज का फट्टा तथा दो कंबल देने के बाद सींखचे वाली कोठरी में बंद कर दिया गया। कमरा पांच गुणा आठ फुट का था, जिसके एक कोने में टट्टी और पेशाब के बर्तन रखे हुए थे। पकड़े गए दूसरे साथी भी आसपास ही बंद थे जिन्हें न देखना संभव था, न मिलना। रात को उन्हें भुजिया और रोटी मिली। कैदियों के बीच चर्चा थी कि वे बम बनाने वाले हैं। क्रांतिकारियों को जनसाधारण इसी रूप में जानते थे।

मन्मथ नाथ गुप्त ने पहले ही दिन अंग्रेज जेल अधीक्षक डॉक्टर व्हाइट से बेड़ियां उतारने के लिए कहा तो उसका उत्तर था कि वे सरकारी हुक्म से ही उतारी जा सकती हैं।

अगले दिन उन्होंने अपने ऊपर लगे अभियोग के बारे में पूछताछ की, जिस पर उनसे कहा गया कि उन पर ‘सम्राट के विरुद्ध युद्ध घोषणा’ का आरोप है।

एक रोज जब डिवीजन के अंग्रेज आयुक्त जेल में आए तो वे मन्मथ दा की कोठरी में घुस गए। उस वृद्ध अफसर ने उन्हें देखते ही कहा कि ये लोग किशोर हैं, इनकी बेड़ियां काट दो। आयुक्त के पीछे जिला मजिस्ट्रेट और डॉक्टर व्हाइट के अलावा दूसरे अफसर भी थे। उनका हुक्म नोट कर लिया गया। दो घंटे बाद उन्हें बेड़ियों से मुक्ति मिल गई। इस तरह ग्यारह दिन बाद वे इस बोझ से हल्के हुए थे। बाहर से सूचनाओं का आदान-प्रदान जारी था।

कोशिश करने पर बाबू श्रीप्रकाश के घर से पुस्तकें आने लगीं। रात को रोशनी की व्यवस्था नहीं थी सो अध्ययन का क्रम दिन में ही चलता।

सप्ताह भर बाद पुलिस के उप-अधीक्षक आकर मन्मथ दा से मिले। इधर-उधर की बातें करने के बाद वे मुख्य एजेंडे पर आ गए। कहा कि काकोरी की लूट के अलावा भी कई ऐसे मामलों में उनकी हिस्सेदारी के उसके पास प्रमाण हैं। उसने यह भी कहा कि उन्हें फांसी अवश्य होगी। वह सिर्फ फांसी का डर पैदा करने के मकसद से

मन्मथ दा के पास आया था, पर वे इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। बनारस जेल में शिनाख्त कार्यवाही के दौरान बाबू श्रीप्रकाश से मन्मथ दा की ओर इशारा करते हुए मजिस्ट्रेट मिस्टर ऐनुद्वीन ने कहा, ‘खुदा-न-ख्वास्ता जो अभियोग इस नौजवान के



काकोरी क्रांतिकारियों का दल

विरुद्ध लगाए हैं वे साबित हो जाएँ तो इसे कोई फांसी के फंदे से बचा नहीं सकता।'

जेल के दिन भारी पड़ रहे थे। इन दिनों मन्मथ नाथ गुप्त अपनी कल्पना देश के शहीदों में करने लगे थे। मुकदमा लखनऊ में चलना तय हुआ तो एक दिन पिता जी मिलने आए। जब वे फाटक की ओर लड़खड़ाते कदमों से जाने लगे तो अनायास ही उन्हें देखकर मन्मथ नाथ गुप्त की आंखों से आंसू टपक पड़े। लखनऊ जेल ले जाते समय उनके पैरों में बेड़ियां डाली गईं और बुरका पहनाया गया। बनारस छूट रहा था। जन्मभूमि को वे अलविदा कह रहे

थे। न जाने भविष्य में क्या होगा। लखनऊ में उन्हें मामूली हवालातियों के बैरक में रखा गया। विशेष अदालत यहाँ से तीन मील की दूरी पर थी। मजिस्ट्रेट सैयद ऐनुद्दीन के यहाँ मामला पेश हुआ। क्रांतिकारियों को बैठने के लिए बेचें दी गई। उन्हें हथकड़ियां पहना कर ले जाने पर पुलिस ने आपत्ति की, तब उन्हें ले जाते समय बेड़ियाँ पहनाई जाने लगीं जो जेल में लौटने पर उतार दी जातीं। वे पुलिस की लारियों से सड़कों पर गुजरते हुए नारे लगाते और देशभक्ति के गीत गाते।

मन्मथ नाथ गुप्त ने जखर बुखारिन की ‘ऐतिहासिक वस्तुवाद’ और दूसरी कुछ ऐसी ही पुस्तकें पढ़ीं, तब वे पूरी तरह ईश्वर और धर्म के संजाल से अपने को स्वतंत्र कर सके।

क्रांतिकारियों को जो कुछ जेल के भीतर पढ़ने को मिल रहा था उनमें डार्विन की पुस्तक ‘प्राणी जातियों की उत्पत्ति’, हर्बर्ट स्पेंसर का ‘समाज विज्ञान’, रसो का ‘सामाजिक शर्तनामा’, गिबन का ‘रोमन साम्राज्य का उत्थान और पतन’, ऐबट का ‘नेपोलियन’, मिल का ‘उपयोगितावाद’ जैसी पुस्तकों के अतिरिक्त विवेकानंद, रामतीर्थ, अरविंद, भगवानदास, तिलक, रवींद्रनाथ और शेक्सपियर की रचनाएं थीं। अध्ययन, मनन और बहसों का नया ही सिलसिला यहाँ चल पड़ा। रामकृष्ण खत्री कुछ साथियों को मराठी पढ़ाने में मशगूल हो गए। रोशन सिंह ने बांग्ला सीखना शुरू कर दिया। शर्वींद्रनाथ सान्याल को जब बताया गया कि स्वामी दयानंद की सबसे अच्छी जीवनी उर्दू में है तो वे

उर्दू जानने का प्रयास करने लगे। शाहजहांपुर के हरगोविंद ने वह जीवनी उन्हें पढ़कर सुना दी।

मन्मथ नाथ गुप्त उस समय आस्तिकता से मुक्त होने की प्रक्रिया में थे। जिन दिनों जेल से बाहर थे तब राजेंद्र लाहिड़ी और वे आस्तिकता और नास्तिकता के मध्य किसी रेखा पर धूम-फिर रहे थे। आगे चलकर यानी फांसी के वक्त तक लाहिड़ी धर्म के मामले में अपनी धारणा तय नहीं कर पाए थे। मन्मथ नाथ गुप्त ने जरूर बुखारिन की ‘ऐतिहासिक वस्तुवाद’ और दूसरी कुछ ऐसी ही पुस्तकें पढ़ीं, तब वे पूरी तरह ईश्वर और धर्म के संजाल से अपने को स्वतंत्र कर सके। वे यह मानने लगे थे कि धर्म और राजनीति का मिश्रण अंततः समाज के लिए हानिकारक

है। आगे चलकर भगत सिंह ने इस मुकाम पर बहुत वैज्ञानिक ढंग से पहुंचकर इतिहास रचा।



वृद्धावस्था में मन्मथ नाथ गुप्त

जेल में आजादी के लिए मर मिटने वाले क्रांतिकारियों से राजनीतिक कैदियों जैसा व्यवहार नहीं होता था। उनके ऊपर सम्राट के खिलाफ तख्ता पलटने का मुकदमा चलाए जाने पर भी उन्हें राजनीतिक बंदी मानने से इनकार किया जाता था। इसके विरोध में मन्मथ दा और कुछ दूसरे युवा क्रांतिकारी अनशन करने के पक्ष में थे, जबकि वकील तथा दल के वरिष्ठ सदस्यों को यह कदम उचित प्रतीत नहीं हो रहा था। फिर भी रामकृष्ण खत्री, रामदुलारे त्रिवेदी और मन्मथ दा ने एक दिन सवेरे अनशन की घोषणा कर दी। ऐसा होते ही उन्हें अपने साथियों से पृथक केंद्रीय जेल के गोरा बैरक में बंद कर दिया गया।

कर्नल मैके ने आदेश दिया कि अनशन त्यागने तक उन्हें वहीं बंद रखा जाए। यह अनशन सिर्फ तीन दिन तक चला और वे फिर बैरक नंबर ग्यारह में आ गए। इसके

बाद साथियों ने सलाह-मशविरा करके दुबारा अनशन किया, जिसमें सातवें दिन क्रांतिकारियों को बलात्पान कराया गया। ग्यारहवें दिन प्रांतीय सरकार ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की, पर वे इससे सहमत नहीं हुए। सोलहवें दिन क्रांतिकारियों के लिए विशेष व्यवहार का आधार स्वास्थ्य-संबंधी माना गया जिसे मानकर अनशन समाप्त कर दिया गया।

अशफाकउल्ला और शर्चीद्रनाथ बख्शी काकोरी के मामले में देर से गिरफ्तार हुए, इसलिए उन पर पूरक मुकदमा पृथक से चलाया गया, क्योंकि मुख्य मुकदमे की कार्यवाही काफी आगे बढ़ चुकी थी। 18 महीने तक केस चलने के बाद 1927 में 6 अप्रैल को फैसला हुआ जिसमें रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकउल्ला, रोशन सिंह और राजेंद्र लाहिड़ी को फांसी तथा अन्य क्रांतिकारियों को लंबे कारावास की सजा दी गई। मन्मथ नाथ गुप्त को चौदह साल की कड़ी कैद की सजा मिली, जबकि वे इससे अधिक सजा की उम्मीद कर रहे थे।

सजा सुनाए जाने के बाद सभी एक दूसरे से गले मिले। उन्होंने नारे लगाए और ‘सर फरोशी की तमन्ना’ गाते हुए जेल की ओर रवाना होने लगे। अब क्रांतिकारी आपस में सजाओं पर बतिया रहे थे। खास चर्चा यह थी कि फांसी की सजा मिले क्रांतिकारी साथियों का क्या होगा। क्या उनकी सजाएं कम होंगी। सबसे बड़ा मसला उनके सामने यही था कि उन्हें एक साथ जेलों में रखा जाएगा या संयुक्त प्रांत की विभिन्न जेलों में बांट दिया जाएगा।

वे सब जेल के भीतर पहुंचे तो बुरी तरह थक चुके थे। लगभग 4 बजे क्रांतिकारियों का जेल के फाटक पर बुलावा आ गया। थोड़ा अंधेरा घिरने लगा था। एकाएक अनेक जलती लालटेनें लाई गईं, जिनमें से कुछ को पेड़ों पर भी टांग दिया गया। अब जेल के जमादारों ने आकर क्रांतिकारियों को बुलाना शुरू किया। विष्णुशरण दुबलिश और मन्मथ नाथ गुप्त को एक साथ बुलाया गया। फाटक पर पहुंचने पर पता लगा कि इन दोनों को इलाहाबाद के नैनी केंद्रीय

कारागार भेजा जा रहा है। इसलिए उन्हें पुलिस के हवाले कर दिया गया। अब उनकी जिंदगी का नवीन अध्याय शुरू हो रहा था। जीवन और मरण का नया खेल जिसमें उनके सम्मुख शक्तिशाली और क्रूर ब्रिटिश साम्राज्यवाद था।

**अनशन तोड़ने का सुझाव
देते हुए समझाया, ‘अनशन
करना पत्थर की दीवार पर
लात मारना होगा।
जेल-पञ्चति बहुत अच्छी
पञ्चति है। इसकी चक्की में
महीन आटा पिसता है।’
इस पर दुबलिश जी बोले,
‘ठीक है कि जेल-पञ्चति
अच्छी-खासी चक्की है, पर
हम भी लोहे के चने हैं!’**

मन्मथ नाथ गुप्त और दुबलिश जी सवेरे लगभग आठ बजे नैनी की उस मनहूस जेल की फाटक पर गेहूँ के दो दानों की तरह खड़े थे, जिन्हें पीसा जाना था। विशेष व्यवहार न मिलने पर वे सभी अपनी-अपनी जगह पर अनशन का फैसला पहले ही कर चुके थे। भीतर पहुंचकर उन्हें मामूली कैदियों के कपड़े दिए गए। उन्हें बैरकों में ले जाया गया। उन्होंने कैदी कर्मचारियों को राजी कर लिया कि उन्हें आमने-सामने की कोठरी वाले बैरकों में बंद कर दिया जाए। लेकिन बाबू ने यह

देखकर उन्हें दूर ले जाकर बंद करने की व्यवस्था की। मन्मथ नाथ गुप्त के लिए यह बहुत अखरने वाली बात थी। अगले दिन कोठरी खुलते ही वे दौड़कर दुबलिश जी से मिलने के लिए पहुंचे, जो अपनी कोठरी पहले ही खुल जाने से मूंज के फट्टे पर लेटे हुए थे।

अनशन वे शुरू कर ही चुके थे। इसलिए 11 बजे उनकी पेशी जेल अधीक्षक कर्नल पामर के सामने हुई। उसने अनशन का कारण पूछा, फिर फोन मिलाकर जेलों के इन्सपेक्टर जनरल से बात करने के बाद कहा कि कर्नल क्लीमेंट्स की हिदायत है कि आप दोनों को बिलकुल मामूली कैदी समझा जाए। उसने विशेष व्यवहार के लिए अनशन तोड़ने का सुझाव देते हुए समझाया, ‘अनशन करना पत्थर

की दीवार पर लात मारना होगा। जेल-पद्धति बहुत अच्छी पद्धति है। इसकी चक्की में महीन आटा पिसता है।’ इस पर दुबलिश जी बोले, ’ठीक है कि जेल-पद्धति अच्छी-खासी चक्की है, पर हम भी लोहे के चने हैं।’

यद्यपि जेल अधीक्षक को यह बता दिया गया था कि उनका अनशन किसी भी प्रकार स्थानीय अधिकारियों के नहीं, बल्कि यह पद्धति के विरुद्ध संग्राम है। पर यह कहने का कोई असर नहीं हुआ। साथ ही यह किया गया कि उन्हें चेतावनी देते हुए उनके जेल-टिकटों पर भी इसे दर्ज कर दिया गया। अब वे बर्मा के कैदियों के लिए बनाई गई कोठरियों में भेज दिए गए।

अप्रैल का महीना था। गर्म हवाएं कोठरियों को झुलसाने लगी थीं। मन्मथ दा ने जेलर फोर्डहम से कहा कि मैं अनशन कर रहा हूँ, पानी से मुझे परहेज नहीं है। लेकिन उनका पानी बंद कर दिया गया।

अनशन में उनकी हालत नाजुक हो रही थी। अधिकारी उनका मनोबल तोड़ना चाहते थे। भूखे रहकर लड़ना वैसे भी सर्वाधिक कठिनतम लड़ाइयों में है। तभी अचानक गुड़ फ्राइडे के दिन फोर्डहम आया और उसने एक-एक प्याला पानी देने का आदेश दिया। मन्मथ दा को इस पर आश्चर्य हुआ। यद्यपि उन्हें संदेह हुआ कि फोर्डहम धार्मिक कारणों से भिक्षा के रूप में पानी दे रहा है। फिर भी उन्होंने इससे इनकार नहीं किया। मन्मथ दा कहते थे कि एक प्याला पानी जो भीतर गया तो उससे उनके अंदर जो संकुचन तथा सूखापन आ रहा था, वह सब दूर हुआ और वे कुछ समय के लिए ही सही, फूल की तरह खिल गए।

पानी न मिलने के चलते यह हुआ कि स्वास्थ्य जल्दी गिरने लग गया। इसी से सातवें या आठवें दिन नाक के जरिए रबर की नली डालकर बलात्पान कराया गया। ऐसा मन्मथ दा के साथ लखनऊ में हो चुका था। फिर भी इस कवायद में हुई तकलीफ से उनकी आंखों में आंसू झलक आए। अब बलात्पान हर रोज की घटना हो गई थी। इसके

बावजूद उनका वजन घटता जा रहा था। पैंतीस दिनों के अनशन में मन्मथ दा का शरीर कंकाल मात्र रह गया।

गणेशशंकर विद्यार्थी के अनुरोध पर मन्मथ नाथ गुप्त ने यह अनशन तोड़ दिया, लेकिन सरकार ने फिर धोखाधड़ी की। वह अपने वादे से मुकर गई। उसने थोड़ा-थोड़ा करके विशेष व्यवहार योजना को समाप्त कर दिया। अनशन के बाद स्वस्थ होने में मन्मथ दा को कुछ समय लगा। उन्हें मिलने वाली अस्पताल जैसी सुविधाएँ समाप्त कर दी गईं। अब वही कैदी वाला बिस्तरा, यानी मूंज का एक फट्टा और पुराना कंबल। मन्मथ दा की उम्र 20 से कम थी इसलिए उन्हें ‘दुबाड़ा चक्कर’ से ‘लड़का चक्कर’ में रखा गया। उन्हें सश्रम कारावास के चलते रामबांस या मूंज की 300 गज रस्सी तैयार करनी थी, पर ऐसा करने से इनकार करने के कारण वे प्रत्येक सप्ताह कर्नल पामर के सामने पेश किए जाते और सजा मिलती। उनकी कैद की छूट समाप्त कर दी जाती। लेकिन यह प्रक्रिया अधिक दिन नहीं चल सकी। उन्हें बाल

कैदियों के शिक्षक का काम सौंपा गया, पर इसमें भी वे ज्यादा दिन नहीं टिके। उन्हें लगा कि जेल के बंदियों के लिए सिर्फ अक्षर ज्ञान पर्याप्त नहीं है। इसके साथ सामाजिक शिक्षा बेहद जरूरी है।

मन्मथ नाथ जी ने भूख हड़ताल समाप्त कर दी थी, लेकिन वे स्थितियों से बेखबर नहीं थे। उन्होंने गणेशशंकर विद्यार्थी तथा अन्य साथियों को भीतर की बातों से अवगत कराने के लिए कई पत्र लिखे। पर बाहर भेजने के दौरान एक बार उनका लिखा पत्र पकड़ लिया गया। वे लड़का चक्कर से हटाकर एक कोठरी में बंद कर दिए गए। उन्हें तीन महीने की तनहाई की सजा देकर प्रतिदिन सत्रह सेर गेहूं पीसने को दिया जाने लगा। चक्की उनकी कोठरी में ही

**बंद कोठरियों में रहते
उन्होंने पीसने को मिले
कच्चे गेहूं को चबा कर
खाना सीख लिया।
इस तरह वे करीब
आधा सेर गेहूं खा
जाते।**

लगी थी। जिस जमादार महावीर के पास उनके पत्र मिले, उसे निकाल दिया गया।

कर्नल पामर ने अधिकारियों को लिख दिया कि उन्हें किसी और जेल में भेज दिया जाए। उनके पिता ने इंग्लैंड के भारतीय संसद सदस्य साकलतवाला को एक पत्र में काकोरी के सजायापत्ता कैदियों का पूर्ण विवरण भेजा, जिसे पढ़कर उनकी ओर से उपसचिव लॉर्ड विंटरटन को कड़ी प्रतिक्रिया भेजी गई। इन पत्रों में उनकी चौदह साल की सजा का खास तौर पर उल्लेख था। ‘रायटर’ की ओर से यह चिट्ठी-पत्री भारतीय समाचार पत्रों को भेजी गई, जिससे जेल अधिकारी मन्मथ दा से असंतुष्ट हो गए। उन पर सख्त निगरानी रखी जाने लगी।

मन्मथ नाथ गुप्त ने जब गेहूँ पीसना मंजूर नहीं किया, कर्नल पामर ने धमकाया। कहा, ‘पूरी मशक्कत करनी होगी।’ उनका उत्तर था कि खाने भर का एक सेर पीस लेता हूँ। इससे अधिक उनके बस का नहीं। उनके पास अब पिसाई के लिए गेहूँ आना बंद हो गया। कोठरी के भीतर वे पांच कदम टहल सकते थे। ऐसे में इतने चक्कर लगाते कि उनका चलना तीन मील का हो जाता। इन्हीं बंद कोठरियों में रहते उन्होंने पीसने को मिले कच्चे गेहूँ को चबा कर खाना सीख लिया। इस तरह वे करीब आधा सेर गेहूँ खा जाते।

कोठरी में रोज 22 घंटे बंद रहते-रहते उनका वजन बढ़ गया। दुबलिश जी ने उन्हें देखा तो चुहल में कहा, ‘तुमने विशेष व्यवहार पाने की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया।’ मन्मथ दा के लिए यह तनहाई सुखकर थी। गोरे कैदी उन्हें चोरी से कुछ उपन्यास आदि पढ़ने के लिए देने लगे। अखबार भी मिल जाते।

नैनी में तनहाई की सजा समाप्त होते ही मन्मथ दा को 1928 में जनवरी का पहला सप्ताह बीतते ही बरेली केंद्रीय कारागार भेज दिया गया, जहाँ उनके दो साथी राजकुमार सिन्हा और मुकुंदीलाल पहले से मौजूद थे। यहाँ पहुंचते ही मन्मथ दा को चक्की दी गई, पर जल्दी ही जेल प्रशासन ने

उनके जेल इतिहास को देखकर समझ लिया कि उनसे काम लेना संभव नहीं है। अधिकारियों ने उन्हें रस्सी बंटने का काम दे दिया।

उस समय बरेली जेल में बंगाल के दो नजरबंद क्रांतिकारी गणेश घोष और प्रतुल भट्टाचार्य थे, जिनके पास अधिक सुविधाएँ और पुस्तकें आदि थीं। वे किसी तरह उन लोगों से मिलने लगे। वहाँ उन्हें अखबार की खबरें भी मिल

**लाहौर जेल में
यर्चीद्रनाथ दास 63
दिन के अनशन में
शहीद हो चुके थे।
बरेली जेल में यह
खबर मिलते ही मन्मथ
नाथ गुप्त, मुकुंदीलाल,
राजकुमार सिन्हा और
शर्चीद्रनाथ बख्शी ने
भी अनशन शुरू कर
दिया।**

इसके प्रकाशन के लिए राय को 18 महीने की सजा भी दी गई।

उन दिनों जेल प्रशासन की जांच-पड़ताल के लिए एक आयोग का गठन किया गया, जिसके सदस्य थे भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सर सिविस स्ट्यूर्ट, पंडित जगतनारायण मुल्ला और हाफिज हिदायत हुसैन। कर्नल पामर को इसका सचिव बनाया गया था। नैनी और बनारस जेल के भीतर जो दंगे हुए थे, यह आयोग उन्हीं का नतीजा था। इसके समुख दुबलिश, राजकुमार सिन्हा, शर्चीद्रनाथ सान्याल और मन्मथ नाथ गुप्ता के बयान हुए। अब बरेली जेल में शर्चीद्रनाथ बख्शी भी आ गए। 1930 की 16 जनवरी को

जारी। बंगाल के इन क्रांतिकारियों का कहना था कि वे जल्दी ही छूट जाएंगे और बाहर जाकर लड़ाई को उसी बिंदु से शुरू कर देंगे जहाँ से छोड़ा था। उन्होंने मन्मथ दा से यह भी कहा कि पिछले दिनों उत्तर भारत में जो क्रांतिकारी घटनाएं हुईं, उन पर वे एक पुस्तक तैयार कर दें ताकि उसे बाहर छपवाया जा सके।

राजकुमार सिन्हा और मन्मथ नाथ गुप्त ने मिलकर जो सामग्री तैयार की, उसे गणेश घोष ने छूटने के बाद पत्रकार मर्णीद्रनारायण राय को दी। इस पुस्तक के छपने पर उसे जब्त कर लिया गया। पुस्तक का नाम था ‘काकोरी षड्यंत्र’।

मन्मथ नाथ गुप्त के पिता का देहांत हो गया। बाबू श्रीप्रकाश ने यह खबर जेलर के पास भेजी। संध्या समय जैसे ही उनकी कोठरी बंद हो रही थी, तभी जेल का एक मुंशी दौड़ते हुए आया और उसने श्रीप्रकाश जी का पत्र उन्हें थमा दिया। उनके लिए यह पीड़ादायक समाचार था। दो साल से पिता जी को उन्होंने देखा नहीं था और इस समय उनके भाई मनमोहन भी साबरमती जेल में सजा काट रहे थे।

लाहौर जेल में यर्तीद्रनाथ दास 63 दिन के अनशन में शहीद हो चुके थे। बरेली जेल में यह खबर मिलते ही मन्मथ नाथ गुप्त, मुकुंदीलाल, राजकुमार सिन्हा और शर्चीद्रनाथ बरखी ने भी अनशन शुरू कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि लाहौर के साथी भले ही अनशन समाप्त पर दें, पर वे इसे नहीं तोड़ेंगे। इस बार उन्होंने भूख हड़ताल तोड़ने का गणेशशंकर जी का सुझाव भी नहीं माना।

53वें दिन विशेष व्यवहार के लिए डाक से आए हुक्मनामे को देखकर ही उन्होंने हड़ताल खत्म की। क्रांतिकारियों की यह बहुत बड़ी जीत थी। इस संघर्ष में राजकुमार सिन्हा और मन्मथ नाथ गुप्त 33 तथा बरखी जी अपना 35 प्रतिशत वजन खो चुके थे। इसके बाद मन्मथ नाथ जी फतेहगढ़ भेज दिए गए जहाँ 20 जून 1934 को मर्णीद्रनाथ बनर्जी की अनशन में शहादत उनकी आंखों के सामने हुई। कथाकार यशपाल तब इसी जेल में थे।

मन्मथ नाथ गुप्त फतेहगढ़ से आगरा और फिर नैनी के केंद्रीय कारागारों में पहुंचे जहाँ उन्होंने लेख, कहानियाँ और उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। आखिर 24 अगस्त 1937 को 12 साल के जेल प्रवास के बाद मन्मथ दा को रिहा कर दिया गया। दूसरे काकोरी वाले भी इस समय छोड़ दिए गए। नहीं छूटे तो सिर्फ विष्णुशरण दुबलिश, जिन्होंने स्वेच्छा से अंदमान चले जाना स्वीकार किया था। क्रांतिकारी बाहर आए, तब इलाहाबाद की एक सार्वजनिक सभा में उनका स्वागत किया गया। इसके बाद दूसरी जगहों पर भी ऐसे जलसे हुए।



नैनी सेंट्रल जेल

अभी बाहर आए महीना भर भी नहीं हुआ था कि फिर से मन्मथ नाथ गुप्त के जेल जाने की तैयारी हो गई। बात यह थी कि गदर पार्टी के आजीवन काला पानी की सजा काट चुके बाबा बसाखा सिंह, बाबा ज्वाला सिंह और डॉ. भाग सिंह आदि के निमंत्रण पर वे और शर्चीद्रनाथ सान्याल अमृतसर सम्मेलन में गए। यहाँ जयप्रकाश नारायण के अलावा भगत सिंह के परिवार के लोग भी आए थे। मन्मथ नाथ गुप्त के अनुसार वे लोग दूर गांव में गए और रात को बाबा लोगों के मुख्यालय लौटे। रात्रि में दो बजे पुलिस ने उन्हें सोते से जगाकर एक नोटिस दिया जिसमें लिखा था कि 12 घंटे के अंदर पंजाब छोड़कर चले जाएँ। नोटिस जयप्रकाश जी को नहीं मिला था। मन्मथ दा गिरफ्तारी देना चाहते थे, पर सान्याल जी ने कहा कि यहाँ से निकल जाना चाहिए।

पंजाब प्रांत उन दिनों बड़ा था। यहाँ कांग्रेस का नहीं, बल्कि नवाब और रईस मुस्लिम नेताओं का शासन था। इस तरह वे लोग वहाँ से निकल आए।

दिसंबर में दुर्गा भाभी और सुशीला दीदी ने क्रांतिकारियों का एक स्वागत समारोह दिल्ली में आयोजित किया। सब जगह उत्साह था, लेकिन सरकार इस आयोजन को असफल कराने में लगी थी। जुलूस चलने ही वाला था कि छूटे हुए क्रांतिकारियों को नोटिस दिया गया कि वे जुलूस में भाग

न लें, न सभा में बोलें और छह घंटे के अंदर दिल्ली छोड़कर चले जाएं। इस बार क्रांतिकारियों ने आदेश को न मानने का फैसला कर लिया। तय हुआ कि एक-एक क्रांतिकारी गिरफ्तारी देगा। पुलिस वाले एक को पकड़ते तो जुलूस का नेतृत्व करने दूसरा आ जाता। इस तरह मन्मथ नाथ गुप्त चार महीने के भीतर फिर से जेल पहुंच गए। लेकिन दो दिन में जमानत हो गई और वे इलाहाबाद चले आए। इस मुकदमे में उन्हें चार महीने की सजा दी गई, तब वे दिल्ली जेल में रखे गए। 1938 की शुरुआत में वे इस सजा से भी मुक्त हो गए।

इलाहाबाद लौटे तो युवक संघ, साम्यवादी दल और फारवर्ड ब्लाक के साथ काम करना शुरू कर दिया। उनका कमरा युवक संघ का दफ्तर बन गया था। यहाँ बैठकें होतीं और विचार-विमर्श चलता। इसी समय सूबे में कांग्रेस मंत्रिमण्डल के त्यागपत्र देने पर मन्मथ दा को पुनः पकड़ लिया गया। यह नहीं बताया जा रहा था कि उन पर आरोप क्या है। उन्होंने भी कह दिया कि वे जेल जाना चाहते हैं। वैसे ब्रिटिश पुलिस किसी भी आरोप में उन्हें जेल भेज सकती थी और बिना किसी दोषारोपण के भी उन्हें हिरासत में रखा जा सकता था। यद्यपि इस समय तक उनकी लिखी दो पुस्तकें जब्त हो चुकी थीं। उन पर इलाहाबाद के मुद्दीगंज में दो भाषण देने के आरोप में 124-ए का राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। इसमें उन्हें दो साल की सजा दी गई।

यहाँ से छूटते ही मन्मथ दा ने युवक संघ के साथियों को लेकर कोतवाली पर झँडा लगाने का कार्यक्रम तय किया। यह हर रोज होता। इसके बाद उन्होंने कांग्रेस के विरोध में रामगढ़ में सुभाषचंद्र बोस की ओर से आयोजित समझौता-विरोधी सम्मेलन में भी हिस्सेदारी की। मन्मथ नाथ जी बताते हैं, ‘रामगढ़ वे इसलिए गए ताकि वाम मोर्चा बने। वामपंथी स्वयं कुछ नहीं कर सकते थे, पर अहं छोड़ने को तैयार नहीं थे। जयप्रकाश इसमें नहीं आए। उन्होंने राहुल सांकृत्यायन को इलाहाबाद से तार दिया कि आप न आएं। इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे स्वामी सहजानन्द, जिनके अनुसार यह सम्मेलन कांग्रेस से अधिक सफल रहा।

‘इसमें लाखों लोग आए।’ यहीं उनकी भेंट माया गुप्त से हुई, जो आगे चलकर उनकी जीवन संगिनी बनी।

1941 में मन्मथ नाथ गुप्त फिर जेल गए, लेकिन दो साल की सजा पूरी होने पर भी उन्हें छोड़ा नहीं गया। उन दिनों मौलाना अबुल कलाम आजाद नैनी जेल में ही थे। उन्होंने प्रयास करके मन्मथ नाथ गुप्त को रिहाई न किए जाने के विरोध में किया गया उनका अनशन तुड़वाया। इसका नतीजा कुछ नहीं निकला। उन्हें फिर आगरा जेल भेज दिया गया। इस समय देश के बहुत से राजनीतिक बंदी देवली कैंप जेल में भेजे गए, जहाँ उन्होंने अव्यवस्था को लेकर भूख हड़ताल प्रारंभ कर दी। मन्मथ नाथ गुप्त ने सोचा कि वे अपने को देवली के इस संघर्ष से किसी तरह अलग नहीं रख सकते। उन्होंने 17 साथियों के साथ अनशन करने का फैसला कर लिया। आगरा का यह अनुभव उनके लिए इस मायने में विचित्र रहा कि 24 घंटे में ही 15 साथी इस लड़ाई से छिटक कर दूर जा बैठे। भूख हड़ताल 8 नवंबर 1941 को शुरू हुई थी और 9 नवंबर की शाम को वे और उनका एक साथी ही इसमें बचा रह गया। देवली में भी अनशन खत्म हो गया।

मन्मथ नाथ गुप्त तो दूसरी ही मिट्टी के बने थे। मजिस्ट्रेट जेएन सिंघल जेल के भीतर आए, तब उन्होंने अपने ऊपर लगाए गए सारे आरोपों को स्वीकार कर लिया। यह अजीब बात थी कि देवली के कैदियों पर मुकदमा न चलाकर कानूनी कार्यवाही सिर्फ मन्मथ नाथ गुप्त पर की जा रही थी। इस मामले में मन्मथ नाथ गुप्त को तीन महीने की सजा दी गई। आगरा के बाद उन्हें बनारस जेल भेज दिया गया। यहाँ रह कर उन्होंने अपने जिंदगीनामे पर छिपकर कुछ लिखना चाहा, लेकिन मथुरा से आए एक कांग्रेसी की मुखबिरी पर उनकी चीजें जब्त कर ली गईं। वे फतेहगढ़ जेल रवाना कर दिए गए, जहाँ वे पहले भी रह चुके थे।

आजाद हिंद फौज की विप्लवी घटना और 1942 के आंदोलन समाप्त हो चुके थे, पर मन्मथ नाथ गुप्त अभी

तक जेल के भीतर थे। 1946 की 5 अप्रैल को वे अंतिम टोली में रिहा किए गए। इस बार वे सात साल जेल में रहे। कुल मिलाकर मन्मथ नाथ गुप्त ने अपने जीवन के 20 वर्ष जेलों में बिताए। देश की आजादी के लिए उनका त्याग सचमुच अप्रतिम था।

आजाद देश में मन्मथ नाथ गुप्त को सूचना और प्रसारण विभाग में संपादकीय दायित्व मिला, तब वे ‘बाल भारती’, ‘योजना’ और ‘आजकल’ पत्रिकाओं के संपादक बने। यहाँ रहते हुए उनकी कोशिशों से ही कर्मवीर पंडित सुंदरलाल का ब्रिटिश काल में जब्त ग्रंथ, ‘भारत में अंग्रेजी राज’ दुबारा छप सका। आगे चलकर हिंदी के यशस्वी लेखकों में मन्मथ दा का नाम शुमार हुआ। उन्होंने हिंदी, बांग्ला और अंग्रेजी में लगभग 150 पुस्तकें लिखीं।



2012 में जब मैंने बरेली के केंद्रीय कारागार में मन्मथ दा की स्मृति में द्वार का नामकरण और शिलालेख का अनावरण कराया, तब मेरी आंखों में प्रसन्नता और कृतज्ञता के मिले-जुले आंसू थे। उस दिन 28 वर्षों का उनका संग-साथ मुझे बेतरह याद आ रहा था। मैं यह भी विस्मृत नहीं कर पा रहा था कि लेखन की दुनिया में उनका प्रोत्साहन मुझे प्रतिपल प्रेरित करता रहा। मैं यह भी जानता हूँ कि अपने अंतिम दिनों तक वे एक विचारवान क्रांतिकारी बने रहकर समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रति बहुत दृढ़ बने रहे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था, ‘आप जैसे नई पीढ़ी के लोग भगत सिंह को, आजाद को अपना चुके हैं। अब मैं निश्चित होकर मर सकता हूँ।’

मुझे उनके इस कथन पर गर्व महसूस हुआ।

6, फेज-5 विस्तार, पवन विहार, पो. रहेलखंड विश्वविद्यालय,
बरेली-243006 मो.9760875491



कुसुम खेमानी

वरिष्ठ लेखिका। ‘सच कहती कहानियाँ’, ‘एक अचम्भा प्रेम’ (कहानी संग्रह)। ‘एक शख्स कहानी-सा’ (जीवनी)। ‘लावण्यदेवी’, ‘जड़ियाबाई’, ‘लालबत्ती की अमृतकन्या’ (उपन्यास) आदि चर्चित रचनाएँ।

मारवाड़ी राजबाड़ी

एक रात आँख मूँद कर सोने का नाटक करते हुए ऋष्टु ने भी अपने माँ-बाबूजी को आपस में यह फुसफुसाते सुना था : ‘ए जी! क्या सच में ही मशहूर तवायफ फूलबाई इतनी सुंदर और महीन त्वचा वाली हैं कि उनके गले से गुजरती हुई पान की पीक का लाल रंग बाहर से ‘झाँई’ मारता है?’

राधाकृष्ण जी ने पत्नी के भोलेपन पर ठहाका लगाते हुए उन्हें अपने नजदीक खींच कर कहा : “ऐ! मेरी भोली बन्नो यह तो एक कहावत चल पड़ी है, पगली! क्या चमड़ी के पार की चीजें भी बाहर से कभी दिख सकती हैं? उसके पार का फोटो तो वह काला कलूटा एक्सरे ही होता है जो परसों डॉ. रौजरलेन धूप की तरफ करके देख रहे थे।” पति के उत्तर से कांताजी सिहर कर बोली, “जी ये गोरे डाक्टर तो होते ही बदमाश हैं, कहाँ तो मेरे गोरे चिट्ठे बाबूजी और कहाँ वह फोटो? पत्नी की सहज सरल बातों को आधी-अधूरी सुनते हुए राधाकृष्ण जी ने अपनी उनींदी आँखों को अनुमति दे दी और करवट बदल कर सो

गए। थकी हारी कांता जी भी कुछ देर बाद गहरी नींद में सो गई। पर शारारती चुलबुली ऋतु की आंखों में नींद कहाँ? उसने यह फूलबाई नाम अपने दोस्त बहादुर से भी सुना था। बहादुर जब उसे स्कूल छोड़ने और लाने जाता था, तो उसे रास्ते भर की ढेर सारी बातें बताता रहता था। असली राजबाड़ी से सटे अपने घर के बाहर निकलते ही पांच-छः मकानों के बाद ट्राम लाईन वाला बड़ा रास्ता चितपुर रोड था और उसे पार करते ही बाँसतल्ला गली में उसका स्कूल। फिर भी कुछ दूर चलने के बाद ऋतु बीच रास्ते में बैठ जाती और कहती, “बहादुर भैया! पैर बहुत दुखता है, कंधे पर बिठा कर छोड़ आओ न” उसके बहाने पर मन ही मन मुस्कुराता हट्टा-कट्टा बहादुर उसे कंधे पर बिठा कर दौड़ने लगता और ऋतु की हँसी की किलकारी पूरे रास्ते में गूँजने लगती। बहादुर की दया में ऋतु की बालसुलभ चंचलता और अप्रतिम सौंदर्य का बड़ा हाथ था, पर ऋतु को न तो अपने भोलेपन का अंदाज था न ही सौंदर्य का! वह तो बस खुशबू भरी हवा की मानिंद इधर से उधर दौड़ भाग कर सबका मन हरती रहती थी।

आज बहादुर ने स्कूल से आते वक्त उसे बताया था कि बगल वाली राजशाही कोठी के मालिक बड़े



बाबू ने अपनी ‘बागान-बाड़ी’ में परी-सी सुंदर फूलबाई को बुला कर रखा है और एकाध दिन में उसका ‘खड़ा मुजरा’ अपने यार दोस्तों के बीच इस राजबाड़ी के रंगधर में करवाएंगे।” यह पूछने पर कि खड़ा मुजरा क्या होता है, उसने उसकी राजबाड़ी के अपने दोस्त से पूछ कर बताया कि इसमें गाना गाने वाली महिला, खड़ी होकर कुछ हाव-भाव भी दिखलाती है।

बहादुर तेज-तरार ऋतु के बाकी के ढेर सारे प्रश्नों को खा गया, और बोला “बच्चा! तुम हमसे इतना बात मत पूछो, और अभी जो मेरा मुँह से निकल गया है, वह भी तुम माँ-बाबू जी को मत कहना।” ऋतु ने हामी में गर्दन तो हिला दी पर आठ वर्ष पार की उस ‘पटाखा-नानी’ के सिर में फूलबाई का नाम फिरकी वाले लट्टू की तरह घूमता रहा।

वह बेचारा जितना उस ‘बजराक’ की पतली बाहों को खुद की पीठ से अलग करने का प्रयास करता, वह महारानी उतनी ही जोरों से उसे जकड़ लेती।

जाते वक्त उसने बहादुर को गलबहियाँ करते हुए खूब दुलराया। उसकी प्रेम पगी अदायगी पर सीधा-सादा नेपाली निछावर होकर बोला : “बेबी! मालूम होता है, तुमको हमसे कुछ चाहिए।” गर्दन को जोरों से ‘हाँ’ में हिलाकर ऋतु बोली, “बहादुर भाई! सच बोलें तो आपको छोड़ कर मुझे कोई प्यार नहीं करता। माँ-बाबूजी कब्झी भी नहीं पूछते कि हमको क्या चाहिए?” कहते हुए उसने अपनी बड़ी-बड़ी शंखनुमा आँखों में मगरमच्छी आँसू भर लिए। उसकी जल-भरी टलटल आँखें देखकर नेपाल के उस भोले पंछी ने उसे पुचकारते हुए अपने से चिपका कर कहा : “बेबी क्या हम तुम्हारा चाचा नहीं है? हमको बोलो ना? तुमको क्या चाहिए?” इस पर सीधे-सादे बहादुर को अपनी तेज आँखों से जाँच

परख कर वह बोली : “बहादुर भाई! भाई, आपको अपने दोस्तों से राजबाड़ी का सब हालचाल तो मालूम चल ही जाता है, इसलिए आप किसी भी तरह एक बार मुझे फूलबाई को दिखा दीजिए ना, प्लीज?” कह कर वह ‘नाटकीया’ ऋतु बहादुर की पीठ से जोंक की तरह जोरों से चिपक कर ऐसी झूठी-सच्ची सुबकियाँ भरने का नाटक करने लगी कि कोई मँजा हुआ अभिनेता भी क्या करेगा? शरीर से मोटा और अक्ल में भोथा बेचारा गुरखा बहादुर! उस नौटंकी की फंकियों में ऐसा आया कि वह खुद भी ‘रोंदला-सा’ हो गया। वह बेचारा जितना उस ‘बजराक’ की पतली बाहों को खुद की पीठ से अलग करने का प्रयास करता, वह महारानी उतनी ही जोरों से उसे जकड़ लेती। वह ठहरा एक संवेदनशील प्राणी, कोई राक्षस तो था नहीं कि उसकी बाहें तोड़ देता, इसलिए उसने अपना माथा पीट कर कहा : “अच्छा बाबा, हमको पशुपति भगवान का कसम कि हम तुमरा कहे मुजब ई सब करेगा। हे मेरी माँ! अब तो तू मेरी पीठ से उतर जा, नहीं तो मैं स्कूल के भीतर जाकर, पढ़ाने वाली दीदी को शिकायत लगा दूँगा।” धम्म से जमीन पर कूद कर बहादुर को ठेंगा दिखाती वह देवी स्कूल में घुसते हुए फिर से बोली, “बहादुर भाई! पशुपतिनाथ की कसम याद है ना।”

दूसरे दिन स्कूल जाते वक्त उस ऋतु देवी ने असल राजबाड़ी के बड़े दरवाजे पर काफी लोगों का जमावड़ा-सा देखा। कोई छोटे विलायती लड्डुओं की माला से दरवाजे को सजा रहा था तो कोई दरवाजों पर लगी बड़े-बड़े राजशाही मुकुटों की पीतल की



फोटुओं को दवाई लगा कर चमका रहा था, तो कोई अपने कंधे के गम्छों से फिटनों और बग्धियों की गद्दियाँ रगड़ रहा था।

यह गहमागहमी देखकर उस ‘जबरजंग’ का तेज दिमाग ‘आठ सौ हॉर्स पावर’ की रफ्तार से चलने लगा। उसने धीमे से बहादुर से हाथ छुड़ाया और एक ओर जाकर खड़ी हो गई। साफा बँधे ऊँचे कद के हट्टे-कट्टे बड़ी मूँछों वाले राजपूत जवान की बगल में गुलाब-सी नाजुक और अप्सराओं सी सुंदर चपल भंगिमा वाली उस बच्ची और उस दरवान ने अनायास ही वहाँ विश्वविख्यात चित्र ‘ब्यूटी एण्ड द बीस्ट’ की प्रतिकृति कर दी थी। भोले चेहरे वाली ऋषु ने कुछ देर तो दरवान की ओर एकटक देखा पर जब उन्होंने कोई नोटिस नहीं लिया तो अपनी नर्म कोमल उंगलियों से दरवानजी के हाथ को हल्के से हिलाकर धीमे स्वर में पूछा :

**अरे बुद्धू चाचा! तुम
इतना डरते क्यों हो?
हमलोग यहाँ कोई चोरी
तो करेंगे नहीं। मुझे तो
ये सबलोग बूढ़े बाबाजी
के साथ ‘गणेश टाकीज’
में देखे हुए ‘राम राज्य’
सिनेमा के राजा राम
और रानी सीता जैसे
लगते हैं**

को इतना क्यों सजाया जा रहा है?” उस लंबी-चौड़ी मूर्ति ने पूरी तरह झुक कर एकदम कायदे से उत्तर दिया “बेबी साहिबा! आज जर्मांदार साहब का जन्मदिन है इसलिए पूरी रात जलसा होगा।” “जलसा?” ठाकरा जी! यह जलसा क्या होता है? “अरे मेरी फूलकुँवर! तू अब्बी इन सबका मतलब ना समझेगी।” अपनी बड़ी-बड़ी आँखों को और भी फाड़ कर वह महामाया बोली : “ठाकरा जी! आप बड़े लेगों की ये बात ठीक ना है। जदि आप बड़े लोग हमें कुछ समझाओगे ई नहीं, तो हम बच्चे तो मूरख ही रह जावेंगे ना?”

अब क्या था? मारवाड़ी-राजबाड़ी की उस छोरी ने अपनी बातों में हरियाणवी-मारवाड़ी भाषा की लचक और लहजे का जो ‘छौंक’ लगाया था उसे सुनते ही वह साढ़े छः फीटिया साफाधारी इतना खुश हुआ कि उसने हुमक कर उस गुलाबी-परी को अपनी गोद में उठा कर कहा “हे मेरी लाडो! जलसे का मतलब होवै है, कई तरियाँ के नाच गाणे। जिसमैं जर्मीदार साहब के खास मे हमान आवेंगे।” “नाच



भी होवेगा ठाकरा जी।” “हाँ बेबी साहिबा, वो तो होणा ही है।” यह सुनते ही वह महारानी ठाकराजी की गोद से ऐसी तेजी से फिसली जैसे बच्चे फिसलने से फिसलते हैं। उसकी इस हरकत से बेचारे ठाकरा जी ऊँक-चूक हो गए, और ओय! ओय! करते हुए उसे संभालने के लिए तेजी से आगे बढ़े ही थे कि बहादुर ने उनकी पीठ को दिलासा में थपथपाकर कहा : “साबजी उसको कुछ नहीं होगा। आप उसको जानता नहीं है। आकाश में जब भगवान बदमाइशी बाँटता था तब इसने उसे अपना सिर में सबसे जादा भर लिया था।”

कहते हुए आगे जाती उस ‘रंगबाज’ को बहादुर ने दौड़कर गोद में उठाया और तेजी से स्कूल की ओर जाने लगा।”

“बहादुर चाचा! एक मिनट रुको इतना दौड़ते क्यों हों? अभी बहुत टाईम है।”

“देखो बच्चा! तुम अब चुपचाप स्कूल चलो और खबरदार अब तुम हमसे राजबाड़ी के लिए कुछ भी

नहीं बोलेगा।”

“अरे बुद्धू चाचा! तुम इतना डरते क्यों हो? हमलोग यहाँ कोई चोरी तो करेंगे नहीं। मुझे तो ये सबलोग बूढ़े बाबाजी के साथ ‘गणेश टाकीज’ में देखे हुए ‘राम राज्य’ सिनेमा के राजा राम और रानी सीता जैसे लगते हैं इसीलिए मैं इन्हें पास से देखना चाहती हूँ।”

“ओरे मेरी माँ! हे देवी, तुम कभी उछल कर इनको छू मत लेना कि ये लोग असली हैं या नकली। बच्चा! यदि ऐसा हो गया तो सोच लेना कि तुम्हारा बहादुर चाचा का माथा गरदन से अलग हो जाएगा।”

अपनी बड़ी आँखों को कनपटियों तक खींच कर वह ‘बड़गर’ की तरह बहादुर से बोली “चाचा, क्या मैं कोई बुद्धू लड़की हूँ, जो यह सब करके अपने प्यारे चाचा को डॉट-पिटवाऊँ? कहकर वह अपने दोनों हाथों को बहादुर के गले में डालकर लाड़ से इधर से उधर झूलने लगी। बेचारा बहादुर हिचकोले खाता पशुपति नाथ का नाम जपता उसे स्कूल के गेट पर पटककर भागा ही था कि पीछे से उस पटाखा की आवाज आई “चाचा! शाम को जल्दी घर जाएँगे, आज खेलेंगे नहीं, तुम टाइम से आ जाना।”

3 लाउडन स्ट्रीट, कोलकता-700017

वागर्थ

ऑनलाइन पढ़ें मिलकर बांटकर

पाठक ही हैं हमारा भरोसा!

ग्राहक बनें

वार्षिक 300/- रुपये ■ रजिस्टर्ड डाक से 240 रुपये अतिरिक्त
Bharatiya Bhasha Parishad के नाम चेक से भुगतान करें
या नेफ्ट द्वारा : कोटक महिंद्रा बैंक, शाखा : लाउडन स्ट्रीट,
A/c no. 8111974982, IFSC Code KKBK0006590
पर उपर्युक्त नाम से किए जा सकते हैं।

सहयोग करने के लिए संपर्क : मीनाक्षी दत्ता मो. 9163372683
बेहतर लेखन - बेहतर वागर्थ
पाठकों की वापसी का अभियान !

लेखकों से अनुरोध है कि वह छोटी रचनाएँ भेजें जो अप्रसारित हों।

प्रकाशक और मुद्रक कुसुम खेमानी द्वारा भारतीय भाषा परिषद 36ए शेक्सपियर सरणी, कोलकाता 17 के लिए प्रकाशित
और मुद्रित। सत्ययुग एम्प्लाइन को-ऑपरेटिव इण्डस्ट्रीयल सोसाइटी लि., 13 प्रफुल्ल सरकार स्ट्रीट, कोलकाता 700072
द्वारा मुद्रित। संपादक : शंभुमाथ